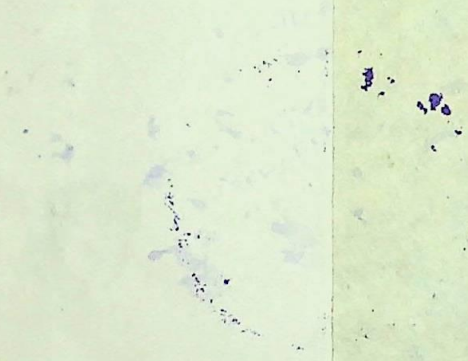
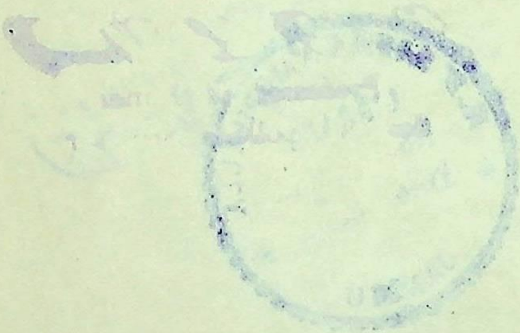
संस्मरण और आखेट

डा. रमेश कुमार शर्मा





संस्मरण और आखेट

(ब्रज प्रदेश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार-पत्रकार स्वर्गीय पं० श्रीराम शर्मा
की चुनी हुई रचनाओं का संकलन)

सम्पादक

डा० रमेश कुमार शर्मा

[redacted] अध्यक्ष—स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर)

साहित्य प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक

साहित्य प्रकाशन
आपका बाजार, हास्पिटल रोड, आगरा

अग्रिम प्रतियाँ
अगस्त १९७८

मुद्रक—निशा प्रिन्टर्स, आगरा

अनुक्रम

भूमिका

पं० श्रीराम शर्मा की जीवनी :

शर्माजी का जन्म सन् १८९६ में उत्तर प्रदेश के जिला मैनपुरी (तहसील शिकोहाबाद) के अन्तर्गत ग्राम किरथरा में हुआ। उनके पिता पं० रेवतीराम शर्मा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और शर्माजी को विद्या-व्यसन उन्हीं से प्राप्त हुआ था। शर्माजी के पितामह बहुत बड़े ज़मीदार तथा धनवान व्यक्ति थे परन्तु दुर्भाग्य से उनके पिता पं० रेवतीराम शर्मा का निधन अल्प आयु में ही हो गया, श्रीरामजी उस समय चार-पाँच वर्ष की आयु के ही थे। उन्हीं दिनों रिश्तेदारों तथा अन्य जमीदारों के कुचक्र ने उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति जाती रही। १५० बीघा जमीन मात्र रह गई। शर्माजी की माताजी ने एक पेड़ के नीचे तिरपाल डाल कर, खेत में रहकर अपने तीन बेटों के साथ संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत किया। स्वयं खेती की और बेटों का पालन-पोषण किया। शर्माजी के बड़े भाई पं० बालाप्रसाद शर्मा हाईस्कूल तक पढ़े थे, और फारसी, उर्दू, अँग्रेजी, बँगला, संस्कृत तथा हिन्दी के ज्ञाता थे। शर्माजी को आरम्भिक शिक्षा उनके बड़े भाई से ही मिली, बड़े भाई के कठोर अनुशासन ने उन्हें भी अनुशासन-प्रिय बना दिया। शर्माजी के छोटे भाई (पं० जगन्नाथ शर्मा) खुरजा में अध्ययन करते समय एक भयंकर रोग से पीड़ित हो गए थे और लगभग चौदह वर्षों तक शय्याग्रस्त रहे। उन्हीं को नायक (बोलती प्रतिमा) बनाकर शर्माजी ने रेखाचित्र लिखना आरम्भ किया था।

पं० श्रीराम शर्मा की पत्नी का नाम श्रीमती लक्ष्मी देवी था। अपने

विवाह में शर्माजी ने घोर आदर्शवाद का निर्वाह किया था। उनके श्वसुर पं० हेतराम शर्मा आर्य समाजी थे। विवाह में पाँच व्यक्ति बारात में गए थे तथा दहेज में केवल एक नारियल, एक साड़ी तथा सवा रुपया स्वीकार किया गया था। स्मरणीय है कि शर्माजी के श्वसुर अच्छे धनवान व्यक्ति थे। शर्माजी की ग्यारह सन्तानों में से पाँच जीवित हैं। उनकी सबसे बड़ी पुत्री कुमारी कमला शर्मा आगरा में एक कन्या विद्यालय की प्रधानाचार्या हैं। बड़े पुत्र रमेश कुमार शर्मा, कश्मीर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष हैं। दूसरी बेटी, श्रीमती शारदा अग्निहोत्री आजकल दिल्ली में हैं, उनके पति श्री ओमप्रकाश अग्निहोत्री रेल विभाग में वरिष्ठ अधिकारी हैं। सबसे छोटी बेटी श्रीमती सरोजिनी अवस्थी केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा में पढ़ाती हैं, तथा उनके पति श्री सरोजकुमार अवस्थी, आगरा कालिज में विधि विभाग में पढ़ाते हैं। छोटे पुत्र श्री उदयन शर्मा, पत्रकार हैं, कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'रविवार' (हिन्दी) तथा 'सनडे' (अँग्रेजी) के दिल्ली स्थित मुख्य संवाददाता हैं।

पं० श्रीराम शर्मा ने आरम्भिक शिक्षा अपने बड़े भाई से प्राप्त की और तदुपरान्त खुर्जा में हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की। श्री जगदीश चन्द्र माथुर (नाटककार) के पिता उनके अभिभावक तथा प्रधानाचार्य थे। शर्माजी कहा करते थे कि उनके आरम्भिक जीवन पर माथुर साहब का बहुत प्रभाव पड़ा था। शर्माजी अपनी माताजी के प्रभाव के बाद अपने ऊपर माथुर साहब का प्रभाव मानते थे। हाईस्कूल पास करने के बाद शर्माजी ने आगरा कॉलिज में प्रवेश लिया। प्रति शनिवार वे पैदल तैंतीस मील अपने गाँव जाया करते थे और प्रति सोमवार आधी रात चलकर आगरा आ जाया करते थे। रेल किराये के साढ़े पाँच आने बचाने के लिए वे यह करते थे। शरीर से वे अत्यन्त शक्तिशाली थे, और मन से उतने ही निर्भय। गाँव के जमींदारों के लठैतों को अपने साथ के १५-२० लड़कों के साथ, आठ-दस वर्ष की आयु में, उन्होंने रेल की पटरी के पत्थरों से मार मार कर भगा दिया था। कुएँ में घुस कर काले साँप को मारा था। ये सारे कार्य उनके चरित्र तथा स्वभाव के द्योतक हैं। बी० ए० में पढ़ते समय उनका सम्पर्क

पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा श्री गुलजारी-लाल नन्दा से हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन तथा काँग्रेस के कार्यक्रमों में वे कूद पड़े। धनाभाव के कारण आगरा से कानपुर पैदल जाकर उन्होंने कांग्रेस का अधिवेशन देखा। इसी बीच श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आये, जिन्हें वे जीवन भर राजनीति तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना गुरु कहते थे। बी० ए० पास करने के बाद शर्मा जी ने एम० ए० (अर्थशास्त्र) तथा एल एल० बी० की कक्षाओं में प्रवेश लिया। उन्हीं दिनों श्री गणेशशंकर विद्यार्थी गिरफ्तार कर लिए गए। जेल से उनका सन्देश प्राप्त करके शर्माजी ने पढ़ाई छोड़ दी और 'प्रताप' (कानपुर) का सम्पादन संभाल लिया। उसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। सम्पूर्ण जीवन, पत्र-कारिता, लेखन तथा राजनीतिक कार्य में अर्पित कर दिया। शर्माजी का देहावसान २७ फरवरी सन् १९६७ को आगरा में हुआ।

राजनीतिक कार्य :

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के प्रभाव से राजनीति में प्रवेश करने के बाद शर्माजी धीरे-धीरे महात्मा गान्धी के अत्यन्त निकट हो गए थे। १९४२ से पूर्व के आठ-दस वर्षों तक वे प्रति वर्ष दो मास सेवा ग्राम में गांधीजी के पास रहा करते थे। बापू का उन पर अटूट विश्वास था। शर्माजी के अन्य सहयोगी थे, पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री बाल-कृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री रफी अहमद किदवई इत्यादि। आचार्य कृपलानी, श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन, पं० गो० व० पन्त, डा० कैलाशनाथ काटजू आदि नेताओं के साथ उनके घनिष्ट सम्बन्ध थे। १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय शर्माजी को उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त) तथा मध्य प्रदेश का प्रभारी नेता नियुक्त किया गया था। इसके पूर्व मैनपुरी षडयंत्र केस में उनका सहयोग था। विचारों तथा कर्मों से क्रान्तिकारी शर्माजी १९४२ के आगरा षड्यंत्र केस के प्रमुख अभियुक्त थे। केस का नाम था King Emperor v/s SriRam Sharma and others. । इस मुकद्दमे में १४ अभियुक्त थे। शर्माजी के बड़े पुत्र रमेश, उनकी बेटी कमला

के साथ उनके बड़े भाई पं० बालाप्रसाद शर्मा पकड़े गए थे। अन्त में १९४५ में सब लोग जेल से रिहा हुए। गिरफ्तारी और जेल-प्रवास के दौरान शर्मा जी के तीन पुत्रों की मृत्यु हो गई और पुलिस की मारपीट के कारण उनका एक कान भी फट गया था। जेल से छूटने के बाद वे सीधे गांधीजी के पास गए थे। महात्मा गान्धी की हत्या के बाद वे लेखन कार्य में ही अधिक रत रहे। जीवन के अन्तिम ८-१० वर्षों में उन्होंने नेत्रहीन अवस्था में पाँच पुस्तकें बोलकर लिखीं। 'ग्लोकोमा' के कारण उनके दोनों नेत्रों की ज्योति जाती रही थी।

साहित्यिक कार्य

(अ) **पत्रकारिता**—शर्माजी ने 'प्रताप' (कानपुर) के सम्पादन से पत्रकारिता में प्रवेश किया। अनेक बार वे 'फ्री लांस' पत्रकारिता भी करते रहे। देशी-विदेशी पत्रकारों से उनका सम्पर्क रहा। इस क्षेत्र में स्व० रामानन्द चट्टोपाध्याय का प्रभाव भी उनके ऊपर पड़ा। 'योगी' (पटना) 'सैनिक' (आगरा) आदि के प्रबन्ध, सम्पादन तथा संचालन में योग देते रहे और १९३८ से १९५२ तक वे 'विशाल भारत' के सम्पादक रहे। विशेष बात यह है कि उन्होंने 'विशाल भारत' (कलकत्ता) से वेतन नहीं लिया। श्री मोहन सिंह सैंगर तथा 'अज्ञेय' जी उनके सह-सम्पादक थे। शर्माजी ने जेल-जीवन के काल में सैंगर जी 'विशाल भारत' का सम्पादन करते रहे। शर्मा जी ने पत्रकारिता के साथ-साथ सम्वाददाता का कार्य भी किया था। 'विशाल भारत' में उनके लिखे १००० पृष्ठों के सम्पादकीय अपना विशेष राजनीतिक तथा साहित्यिक महत्व रखते हैं।

(ब) **शिकार साहित्य**—हिन्दी में शिकार-साहित्य का आरम्भ शर्माजी ने ही किया था। वे स्वयं बड़े पटु शिकारी थे। जिम कार्बेट से उनके बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। जिम कार्बेट ने अपनी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में इसी शर्त पर करवाया था कि शर्माजी यह कार्य करें। अण्डा-माँस शर्माजी छूते भी न थे—शुद्ध शाकाहारी थे, इस कारण हिंस्र पशुओं का ही शिकार वे करते थे। शिकार सम्बन्धी उनके ग्रन्थ हैं—**शिकार**, **प्राणों का सौदा**,

जंगल के जीव, तथा जिम कार्बेट की पुस्तकों (**रुद्र प्रयाग का आदमखोर** आदि) के अनुवाद। हिन्दी के लेखक होते हुए भी शर्माजी प्राणी विज्ञान के विशेषज्ञ थे। वनस्पति एवं जीव विज्ञान (बॉटनी तथा जूलोजी) के साथ-साथ कृषि विज्ञान के माहिर भी थे। भारत के जंगली जीव, भारत के पक्षी, हमारी गायें तथा 'पपीता' आदि उनकी इस विषय की पुस्तकें हैं। जिनमें से बहुत सी भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने प्रकाशित की हैं।

(स) **रेखाचित्र-संस्मरण (रिपोर्ताज)**—शर्माजी हिन्दी साहित्य में इन विधाओं के जन्म-दाता माने जाते हैं। इस क्षेत्र में उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—बोलती प्रतिमा, वे जीते कैसे हैं, संघर्ष और समीक्षा, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, सेवाग्राम डायरी, संस्मरण सीकर तथा नयना सितमगर (अप्रकाशित)।

हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू तथा फारसी के विद्वान होने के कारण शर्माजी की भाषा-शैली एक विशेष प्रकार की प्रभविष्णुता से युक्त है। उनके जीवन पर अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा तथा दीनबन्धु एण्ड्रूज का प्रचुर प्रभाव पड़ा था। अनेक वर्षों तक उनकी वार्षिक गतिविधि यह रही थी, कि वे दो मास गांधी जी के पास रहते थे, दो मास शान्ति निकेतन में रहते थे, दो मास शिकार खेलते और शेष समय लेखन तथा राजनीतिक कार्यों में व्यतीत करते थे। १९३५ की कांग्रेसी सरकार बनने पर वे उत्तर प्रदेश की सरकार में भी कुछ दिन रहे थे। शर्मा जी के व्यक्तित्व में विरोधों का विचित्र सम्मिश्रण था। शिकार खेलते थे, माँस-अण्डा नहीं खाते थे। जहाँ भी जाते थे साथ में रायफल, सितार तथा कैमरा साथ होता था। लखनऊ के उस्ताद हामिद हुसैन से उन्होंने सितार सीखा था। गान्धीजी, आचार्य म० प्र० द्विवेदी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के हजारों फोटो उन्होंने खींचे थे।

पं० पद्मसिंह शर्मा कहा करते थे कि शर्माजी की सी भाषा हिन्दी के बहुत कम लेखक लिख सके हैं। उनका कथन था कि "शर्माजी की राइफल

का निशाना जितना अचूक है, उतना ही उनकी भाषा का भी है। वह सीधे पाठक के हृदय में प्रवेश कर जाती हैं।" एक विशेष बात शर्माजी की शैली की है, उनका उद्धरणों का प्रयोग। विशेषकर उर्दू के शेरों का प्रयोग। लगभग प्रत्येक लेख निबन्ध इत्यादि में उर्दू के शेरों के उद्धरण उन्होंने दिए हैं, विशेषकर अन्त में। पौरुष, क्रान्ति, सादगी, ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम, गान्धीवाद, रूढ़ि विरोध तथा पूर्ण निर्भयता शर्माजी की विशेषताएँ थीं। सत्य-वादिता तथा कट्टर ईमानदारी उनके सिद्धान्त थे। शिकार खेलते समय एक दिन में साठ मील पैदल चलना उनके लिए सहज बात थी। गढ़वाल के पर्वतीय प्रदेश में जिन दिनों वे टिहरी के हाईस्कूल के हैडमास्टर थे, उन्होंने सर्वाधिक शिकार खेला, विशेषकर शेर का। उन दिनों राइफल सहित १०-१२ किलो वजन लादकर पहाड़ पर ५५-६० मील प्रतिदिन चलना उनकी आदत थी। चारित्रिक, शारीरिक, राजनीतिक, साहित्यिक प्रत्येक प्रकार की दुर्बलता से उनको घृणा थी। इसके साथ-साथ वे परम भावुक तथा पर-दुख-कातर थे। सर्वधर्म समभाव तथा सामाजिक समत्व में उनका पूर्ण विश्वास था। 'बोलती प्रतिमा' के रेखाचित्रों में मजदूर एवं दलितवर्ग के उनके चित्र इसके प्रमाण हैं। हिन्दी साहित्य में इतने विभिन्न क्षेत्रों में गति-वान रहने वाला व अन्य व्यक्तित्व संभवत: अन्य दूसरा नहीं है।

टिप्पणी

(१) **बोलती प्रतिमा**—पं० श्रीराम शर्मा के लघु भ्राता पं० जगन्नाथ शर्मा ही 'बोलती प्रतिमा' हैं। पल्लू शर्माजी के बड़े पुत्र रमेश का बचपन का नाम है। प्रथम पुरुष में वर्णन करके लेखक ने अपनी बात को व्यक्तिगत रूप में और अपनी भावनाओं को तटस्थ रूप में (Objectively) प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। व्यक्तिगत दुख, बीमारी तथा पीड़ा को सहन करने के लिए परोपकार की भावना सर्वोत्तम उपाय है। शरीर से प्रतिमावत जगन्नाथ जी की आत्मा सजग है तथा विवेकपूर्ण प्रकाश से आलोकित है। भाग्य तथा विधाता से प्राप्त सुख तथा दुख को इस दृष्टि से भोगने वाला व्यक्ति ही वास्तव में योगी है। भारतीयता तथा ग्राम्य-जीवन के प्रति लेखक

का प्रेम भी यहाँ प्रदर्शित होता है। प्रकृति प्रेम तथा प्रकृति के प्रांगण में विचरण शर्माजी के जीवन का अभिन्न अंग था। यह तथ्य भी यहाँ उभरकर सामने आता है। 'बोलती प्रतिमा' नामक पुस्तक से संकलित है।

शब्दार्थ—मैगजीन=अस्त्रागार, गोला बारूद, हथियार इत्यादि रखने का भण्डार। पौनी=कातने से पूर्व बनाई जाने वाली रुई की पतली शलाकाएँ। लखैरियों=एक प्रकार के कीड़े। टेरती है=बुलाती है।

(२) **हरनामदास**—सम्पत्ति एवं वैभव अस्थायी हैं। जो व्यक्ति इनका भोग करता हुआ भी इनके चले जाने पर अपना विवेक नहीं खोता वह अन्य दोषों (मदिरा पान इत्यादि) के रहते हुए भी वास्तविक मानव है। बुरे से बुरे व्यक्ति में भी गुण हो सकते हैं, जिस प्रकार कि अच्छे से अच्छे व्यक्ति में दोष हो सकते हैं। संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्णरूपेण बुरा या अच्छा नहीं है, इस भाव का संकेत यहाँ किया गया है। दूसरे के दुखों और भावों को सहानुभूतिपूर्वक समझने की शक्ति लेखक में है, यह तथ्य यहाँ प्रचुर मात्रा में प्रकट हो रहा है। 'बोलती प्रतिमा' नामक पुस्तक से संकलित है।

शब्दार्थ—डाँडियो=तीर्थ यात्रा से यात्रियों को कन्धों पर उठाकर ले जाने वाली कुर्सीनुमा पालकी।

(३) **नयना सितमगर**—यह शर्माजी के शिकार सम्बन्धी संस्मरणों में एक प्रसिद्ध संस्मरण है। जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों के साथ-साथ सम्पूर्ण प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण एवं वर्णन की भेदक दृष्टि एवं शक्तिशाली शैली के धनी थे शर्माजी, यह कथा इस तथ्य का प्रमाण है। श्री रफी अहमद किदवई के आदेश पर शर्माजी हरदोई जिले की रियासत रूटियारी के मैनेजर हो गए थे और उन दिनों उन्होंने मगर तथा जंगली सूअर का शिकार खूब किया था। यह शिकार-कथा वहीं के प्रसंग की है। 'शिकार' नामक पुस्तक से ली गई है।

शब्दार्थ—गलगल=बैलों के गले में पहिनाये जाने वाले बड़े-बड़े घुंघरुओं की माला।

(४) **वे जीते कैसे हैं**—जीवन की कुछ घटनाएँ मनुष्य को भीतर से तोड़कर रख देती हैं। दुखों और विपत्तियों की शृंखला सी बन जाती है, फिर भी व्यक्ति जीवित रहता है। वह किस प्रकार भयानक दुखों को सह-कर जीता है, कभी-कभी यह अकल्पनीय हो जाता है। जो व्यक्ति आम के पेड़ से गिर कर मरता है वह शर्माजी का चचेरा भाई था, जिससे उन्हें बहुत प्रेम था। उस व्यक्ति के पिता (शर्माजी के चाचा) के तीनों पुत्र जवानी में उनके सामने ही अचानक दुर्घटनाओं के कारण काल-कवलित हो गए। एक नातिन १७ वर्ष की आयु में विधवा हो गई। तीन पुत्रों में से एक फिरोजाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगों में जलाकर मार दिए गए थे। फिरोजा-बाद की काल-कोठरी नामक प्रसिद्ध कथा शर्माजी ने इसी घटना के आधार पर लिखी थी। मानव जीवन की मजबूरियों का गहन सहानुभूतिपूर्ण चित्रण इस वर्णन में पाया जाता है। नाटकीय शैली में, विभिन्न असम्बन्ध लगने वाले घटना-दृश्यों का, ऐसा चित्रण है कि उनसे एक सम्पूर्ण भाव-चित्र का प्रभविष्णु बिम्ब उभर कर आता है। इसी नाम की पुस्तक से संकलित है।

(५) **शैतानी समूह**—यह एक महत्वपूर्ण कथा है। जंगली कुत्तों के जीवन का वैज्ञानिक एव स्वाभाविक चित्रण है। एक-एक तथ्य जीव-विज्ञान के अनुसार वर्णित है। जीव-जन्तुओं के जीवन से सम्बन्धित यह कथा 'जंगल के जीव' नामक पुस्तक से ली गई है। अपने समय में उसकी प्रसिद्धि का एक मुख्य कारण था इस कथा से निकलने वाले संकेत। सूखा-जलता जंगल भारत है। शेर अँग्रेज है। कुत्तों का समूह भारतीय जनता है, जिसकी शक्ति व्यक्तिगत वीरता के साथ-साथ उसका संगठन है। दंगली देश की जनता का सच्चा नेता है। जंगली उन देशद्रोही 'टोडी बच्चों' का प्रतीक है जो आन्दोलनों में घुसकर उनकी हानि करते हैं, अपने स्वार्थ के लिए।

शब्दार्थ—वेगरी = छितरी हुई, दूर-दूर।

(६) **यमदूत से साक्षात**—अन्य शिकारियों के अनुभवों को आधार बना कर लिखी गई शिकार-कथाओं के संग्रह "प्राणों का सौदा" से संकलित एक सत्य शिकार-कथा। शेर के स्वभाव तथा उसकी नैसर्गिक प्रतिक्रियाओं

का स्वाभाविक चित्रण है। व्यक्ति यदि साहस से काम ले और अन्त तक आशा न छोड़े तो कठिन से कठिन परिस्थिति में से भी वह कुशलतापूर्वक निस्तार पा सकता है, यह इस कथा का सन्देश है। भय तथा आतंक के सत्य एवं रहस्यात्मक वातावरण; (दोनों का) का चित्रण करने में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

शब्दार्थ—सेरों=खाट के सिरहाने तथा पायतानें के डण्डों को सेरा कहते हैं। दायें-बायें वालों की पाटियाँ कहते हैं।

(७) **आन्दोलन का पूर्व पृष्ठ**—'संघर्ष और समीक्षा' नामक पुस्तक से संकलित है। इस पुस्तक में शर्माजी के सन् १९४२ के आन्दोलन सम्बन्धी संस्मरण संकलित हैं। ९ अगस्त १९४२ की बम्बई-कांग्रेस की बैठक के बाद शर्माजी को तत्कालीन संयुक्त प्रान्त (आज का उत्तर प्रदेश) तथा मध्य प्रान्त (आज का मध्य-प्रदेश) के क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेता बनाया गया था। उस आन्दोलन की भूमिका उसकी घटनाओं का वर्णन, उसकी सफलताएं तथा असफलताएँ एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के भविष्य-संकेत इस पुस्तक की विशेषताएँ हैं। किस प्रकार कुछ लोगों ने देशभक्ति के नाम धन कमाया और स्वार्थ पूरे किए इसका भी संकेत इन संस्मरणों में पाया जाता है। लाखों की सम्पत्ति गँवाकर भी शर्माजी ने सरकार से मुआवजा नहीं लिया था। श्री गोविन्द वल्लभ पन्त (उ० प्र० के तत्कालीन मुख्यमत्री) के कहने पर शर्माजी ने उत्तर दिया था—"I do not want to cash upon my Patriotism."

(८) **सूबेदार जुम्मन खाँ**—यह संस्मरणात्मक रेखाचित्र भी 'संघर्ष और समीक्षा' से लिया गया है। मानव के सुख और दुख की अभिव्यक्ति हँसना और रोना है, और सम्पूर्ण संसार की मानवता के हँसने और रोने की भाषा समान है। धर्म, देश, जाति, धन और भाषाओं की सीमाएँ इस 'भाषा' पर लागू नहीं होतीं। शर्माजी के तीन पुत्रों की मृत्यु उनके जेल-प्रवास में हो गई थी। शर्माजी के छोटे पुत्र तथा छोटी पुत्री के दुख को सूबेदार जुम्मन खाँ समझ सकता था। यह कथा धर्मों की सीमाओं के परे

दो 'पिताओं' की पीड़ा की समानता को चित्रित करती है। हिन्दू राम प्रसाद तथा चक्रवर्ती शर्माजी तथा उनके साथियों की हत्या (गैर कानूनी) करवाना चाहते हैं, और मुसलमान पिता जुम्मन खाँ यह नहीं होने देता। आगे चल कर अपने पुत्र उदयन का घर का नाम शर्माजी ने जुम्मन रखा था जो कि आगे चलकर 'जुमजुम' हो गया। इस संस्मरण में शर्माजी की गांधीवादी नैतिकता के दर्शन भी हमें होते हैं, जो कि उनके जीवन की प्रेरक-शक्ति थी।

शब्दार्थ—इखलाकी कैदी=जेल की भाषा में राजनैतिक कैदी से भिन्न सामान्य अपराधी कैदी (Criminal)। बारह ताले=आगरा सेंट्रल जेल के अनेक अहातों में से एक, जिसकी एक बैरिक में शर्माजी तथा उनके साथी कैद थे। डौक=अदालत में अभियुक्त के खड़े होने का स्थान।

(६) **रामकली**—"संघर्ष और समीक्षा" नामक पुस्तक में से लिया गया यह संस्मरण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। अपने मन की मोह-ममता की अभिव्यक्ति मानव के लिए लिए जितनी आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उसके लिए आधार का होना। अपने परिवार से विलग कैदी, वर्षों तक अपने प्रियजनों की स्मृति में भीतर ही भीतर तड़पता है। अपने विशिष्ट उच्चस्थान के कारण वह अपने दुख को किसी से कह भी नहीं सकता, अन्त में किस प्रकार एक पक्षी के प्रति वह अपना वात्सल्य भाव उँड़ेल देता है, यह इस संस्मरण में दर्शाया गया है। पशु-पक्षियों के जीवन की वैज्ञानिक सूक्ष्म बूझ होने के कारण लेखक ने पक्षियों के मनोविज्ञान का भाव-पूर्ण चित्रण किया है। फतहगढ़ जेल के दलबन्दी से युक्त घुटनपूर्ण वातावरण में शर्माजी अन्तर्मुखी होकर चर्खा काता करते थे उस समय के हृदय-मंथन का फल यह संस्मरण है। जिस पुत्र ब्रजेश का जिक्र इस संस्मरण में है, उसका देहान्त भी इसके बाद शीघ्र हो गया था। इससे पूर्व अन्य पुत्रों राकेश तथा दिनेश की मृत्यु हो। चुकी थी दुख एवं पीड़ा के एक विशेष आयाम पर आकर मनुष्य तथा पशु-पक्षी में भेद नहीं रह जाता, उस व्यक्ति के लिए

जोकि 'वसुधैव कुटुम्बकम' में विश्वास रखता है। कुछ ऐसे होते हैं जो इस अनुभूति से अनभिज्ञ हैं, जैसे वह व्यक्ति जो रामकली को पकड़ लेता है। शर्माजी की सहज ग्रामीण संवेदना का संकेत पक्षी के ग्रामीण नाम 'राम कली' में तथा उसके व्यक्तित्व के वर्णन में है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि यह संस्मरण **शिकारी** पं० श्रीराम शर्मा का लिखा हुआ है। जिनका व्यक्तित्व विचित्र विरोधों का समन्वय था। पुष्प से अधिक कोमल तथा वज्र से अधिक कठोर हृदय वाले व्यक्ति ही महापुरुष होते हैं।

: १ :

बोलती प्रतिमा

वसन्त को ऋतुराज मानने का एक कारण कदाचित् यह भी हो कि उसके सुखद शासन में न तो शीत को भयंकरता रहती है और न गरमी की उग्रता दिखाई देती है। समदर्शी नरेश की भाँति ऋतुराज सभी प्रकृतियों के लोगों को—गरमी, जाड़ा और आर्द्रता पसन्द करने वालों को—समदृष्टि से देखता है। जो सबको समदृष्टि से देखे वह मान्य—राजा—तो हुआ ही। शीत से त्रस्त, कम्बल और रजाइयों में से सिर निकालकर चाय और हुक्का पीने वालों से लेकर शीतकाल के प्रेमियों तक के लिए वसन्त एक आदर्श ऋतु है। ऋतुराज की छबीली छटा का प्रदर्शन होता है, उसके यौवन काल में। यौवन के गुदगुदाते ही बालाओं की पगस्थित चंचलता के पैर उखड़ जाते हैं। वह ऊर्ध्वरेती होकर ललाट स्थित दो मैगजीनों—आँखों—में किलेबन्दी कर लेती है, और ऋतुराज में जब यौवन की आभा झलकती है, तब पेड़ और झाड़ियों के आस-पास की चंचलता, इधर-उधर हटकर, उनकी आँखों—फूलों—में जा बसती है, इसीलिए अनेक लताएँ और शाखाएँ नवेलियाँ बनीं, फूलों से गुँथी वेनी को हिलाकर बहुत-से टहलने वालों को मोह लेती हैं। फिर वसन्त में टहलने वालों की संख्या का क्या ठिकाना ! वसन्त में तो टहलने वालों की—शहर के टहलने वालों की—संख्या ऐसे बढ़ जाती है, जैसे बरसात में नदियों की बाढ़।

रही उनकी बात, जो टहलने के अतिरिक्त शिकार के भी शौकीन हैं, सो उनमें बहुतेरों को मटरगश्ती शिकार की धुन सवार हो जाती है। मटरगश्ती शिकार खेलना ही मुख्योद्देश्य नहीं होता, वरन् टहलने और प्रकृति-निरीक्षण पर भी लक्ष्य रहता है। उस समय हाथ में बन्दूक या रायफल होती है, जेब में कुछ कारतूस पड़े होते हैं। अनायास कोई चीज मिल गई तो फायर कर दिया, नहीं तो घूम-घामकर घर लौट आए, या यदि शिकार के लिए कहीं पड़ाव पड़ा हो तो वहीं लौट गए।

एक दिन मैं वसन्त की तरुणाई में मटरगश्ती शिकार को गया। बारह नम्बर की बन्दूक ले ली, और जेब में छ:-सात कारतूस डालकर घूमने निकल पड़ा। मटरगश्ती शिकारी की दशा तृप्त शेर की सी होती है, जो मस्त चाल से अपनी माँद की ओर लौटता है और घात लगाकर नहीं चलता। छोटा-मोटा शिकार मिल जाने पर भी वह उसकी ओर खूनी दृष्टि से नहीं देखता, वरन् खटके से भागे हुए शिकार को देखकर यह कहता प्रतीत होता है—"जा चला जा, समझता होगा अपनी चालाकी से बच गया।" खैर, घूमते-घामते मैं काफी दूर निकल गया। ध्यान शिकार की ओर तो था ही नहीं, खेतों और पेड़ों पर ही विचार-बिन्दु एकाग्र हो रहा था, और रह-रहकर मनुष्य की क्षुद्रता और बेबसी का खयाल आ रहा था। प्रतिवर्ष, कुछ पेड़ों को छोड़कर, सभी पेड़ों पर जवानी आती है, पुराने पत्तों के स्थान में नवीन चिकने पत्ते निकलते हैं। पेड़ों की नस नस से जवानी बरसती है। किसी-किसी आम पर तो मोटी शाखा से भी बौर फूट पड़ता है। वसन्त में हर साल पेड़ों का काया-कल्प होता है। उनकी सभी शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। विशालकाय और गगनचुम्बी डेढ़-दो सौ वर्ष पुराने पीपल को वसन्त ऋतु में देखिए। नई, ओजपूर्ण और कोमल पत्तियों से सजा दूल्हा बना वह अपनी वार्षिक काया-कल्प क्रिया पर उतना ही मुग्ध होता है, जितना तीस-चालीस वर्ष का पट्ठा पीपल। पेड़ जब तक जीते हैं, तब तक वे प्रतिवर्ष युवावस्था प्राप्त करते हैं। बहुत से पक्षी भी इस ऋतु में जवान हो जाते हैं। उनकी चाल-ढाल और बोली से जवानी टपकती है। क्या ही अच्छा होता, यदि मनुष्य भी पेड़ों की भाँति प्रति वर्ष इसी ऋतु में अपनी खोई हुई शक्ति पा सकता—कामुकता और लंपटता के लिए नहीं, वरन जीवन को अधिक सुखी बनाने के लिए। मनुष्यों की अपेक्षा ये अचल प्राणी कितने अच्छे और कैसे सौभाग्यशाली हैं इस दृष्टि से !

कई मील जा निकला; पर बन्दूक चलाने का कोई अवसर ही न मिला। हिरन मिले, लेकिन सब छोटे। बड़े हिरन की खोज करने का विचार ही न था। मटरगश्ती शिकार ही जो ठहरा। फिर चारों ओर पड़ी वसन्त की सेना में से निकलकर एक हिरन के पीछे जाना कोई आसान काम न था, और उस पर वसन्त के जादू की लकड़ी हिरनों पर भी फिरी हुई थी। दो

घण्टे लगातार घूमते रहने से कुछ गरमी मालूम होने लगी। एक मील पीछे एक सुहावनी कुटिया छोड़ आया था। केले और पपीते के पेड़ कुटिया से ऊपर उठे दूर ही से दिखाई पड़ते थे। गाँव से लगी वह कुटिया बड़ी आकर्षक मालूम होती थी। वहाँ कुछ देर आराम करने के विचार से मैं लौट पड़ा। अब दार्शनिक उधेड़-बुन भी बन्द हो गई। लगातार चलने की गरमी और भूख ने विचारों को परकैंच करके मानो कहा—

"ऐ दिल हवाए ज़ुल्फ शिकन दर शिकन को छोड़।"

× × ×

कुटिया पर आया तो चारों ओर शान्ति का राज्य दिखाई पड़ा। हाँ, कुटिया से लगे कुएँ की मनि पर कुछ कबूतर गुटर-गूँ, गुटर-गूँ कर रहे थे। मेरी आहट से किसी को कोई असुविधा न हो, इस खयाल से मैं दबे पाँव कुटिया की ओर बढ़ा; पर मैं कुएँ तक ही पहुँच पाया था कि कुटिया के भीतर से किसी ने कड़ककर पूछा—"कौन है ?"

"कौन है ?" की ध्वनि से मैंने समझा कि कुटिया में बैठा व्यक्ति मेरे आगमन को पसन्द नहीं करता, इसलिये मैं कुएँ के निकट ही ठिठक गया, और कुछ कहने ही को था कि कुटिया से फिर आवाज आई—"अरे भाई, कौन हो ? बोलते क्यों नहीं ? भीतर आओ।" ये शब्द कुछ ऐसी दृढ़ता से कहे गए थे, मानो उन शब्दों का कहने वाला ऐसे प्रश्न करने का अभ्यस्त हो।

"मैं एक यात्री हूँ"—कहकर मैं आगे बढ़ा और कुटिया में पहुँचकर इधर-उधर नजर दौड़ाई, परन्तु वहाँ कोई आदमी दिखाई न पड़ा। कुटिया के बीच में एक चारपाई बिछी थी और उस पर मसहरी लगी थी।

"आप कहाँ से आये हैं ? पानी पीना हो तो वह कुरसी पड़ी है, उस पर बैठ जाइए। अभी कोई आदमी आता होगा, पानी पिला देगा।" ये शब्द मसहरी के भीतर से किसी ने कहे थे। पास जाकर देखा तो मैं दंग रह गया। मसहरी के भीतर एक अचल शरीर चित्त पड़ा था। टाँगें सुकड़ी और इतनी पतली मानो पतले बाँसों पर खाल चढ़ा दी गई हो, और हाथ पौनी-से पतले। छाती इतनी भीतर को घुसी हुई कि पीठ से लगी हुई और इतनी गहरी कि उसमें सेर-दो-सेर अन्न भरा जा सकता था। हाँ, उस चेहरे में दो

आँखें ही थीं, जिनकी पुतलियाँ चलती थीं और जिनके चलने से उस अचल शरीर की स्वामिनी आत्मा आँखों के आस-पास कहीं उलझी मालूम होती थी। हाथों की उँगलियाँ कभी-कभी हिल जाती थीं, पर उनमें इतनी गति नहीं थी कि वे किसी चीज को उठा सकें। उस जीवित शव को देखकर मुझे बड़ी दया आई और क्षमा माँगने के रूप में मैंने कहा—"मेरे कारण आपको कष्ट हुआ हो तो माफ कीजिए। मुझे नहीं मालूम था कि आपको इतना कष्ट है।"

रोगी बोला, "अरे साहब, तो क्या हुआ ? बैठिए न। मेरे कष्टों की क्या बात है ? कोई दो-चार दिन की बात थोड़े ही है।"

"तो आप कब से बीमार हैं ?"

"इन बातों को न छेड़िए। 'शरीरं व्याधि मंदिरम्'। आप सुस्ता लीजिए। कहाँ रहते हैं ? किधर से आना हुआ ?"

"मुझे आप एक यात्री समझें। शिकार खेलने के लिए इधर आया हूँ। आज टहलने की जी में आ गई तो जिधर को मुँह उठा, उधर चल दिया। देखता-भालता इधर आ निकला।"

"तो आप शिकारी हैं ?"

"जी नहीं, पेशे से शिकारी नहीं हूँ, यों शिकार का शौक है। वैसे लिखने-पढ़ने—कलम-घिसने वाला—आदमी हूँ।"

"तो फिर शिकार आपके लिए गुनाह बेलज्जत वाली बात है। क्यों ?"

"कुछ भी समझ लीजिए, पर⋯"

"कौन है, पाती ?" मेरी बात अधसुनी कर शैयाशायी रोगी ने बाहर की ओर कान लगाते हुए कहा।

"हाँ पंडितजी।" पाती ने उत्तर दिया।

"डोल माँजकर ताजा पानी कुएँ से लाओ और घर कह दो कि खाने के अतिरिक्त एक थाली और भी आयगी।" रोगी महाशय ने सुप्रबंधक की ध्वनि में कहा।

अपनी बात के पुराने सिलसिले को छोड़कर मैंने कहा—"आपको आखिर यह रोग क्या है, और कबसे है ?"

"रोग ? क्या बताऊँ ? जब डाक्टरों और वैद्यों की समझ में नहीं

आता कि क्या रोग है, तब मैं क्या नाम बताऊँ ? बस, कर्म-भोग रोग समझ लीजिए।"

'मालूम होता है, आपने इसका इलाज किसी अच्छे डाक्टर से नहीं कराया।"

रोगी महाशय की आँखों से मैं ताड़ गया कि वह एक अपरिचित व्यक्ति के इस प्रकार के अशिष्टतापूर्ण प्रश्नों को, विशेषकर उनके यह कहने पर कि कर्म-भोग रोग है, पसन्द नहीं करते, इसलिए मैंने उत्तर की प्रतीक्षा न करके वार्तालाप की दिशा को बदलकर कहा, "आपकी कुटिया तो आश्रम-सी है।"

"जी हाँ, आश्रम-सी तो है ही, पर आप यह क्या कहते हैं कि मेरी कुटिया।"

"क्यों ? आपकी नहीं, तो किसकी है ? आप ही तो इसके मालिक हैं ?"

"जी नहीं, क्षमा कीजिए, ऐसा समझना भ्रम है। ऊपर देखिए; वह छिपकली दीवार पर बैठी है, यदि वह बोल सकती, तो मुझे विश्वास है, वह इस पर उतना ही अपना अधिकार समझती, जितना कि मैं। छप्पर से लगी बेल में दर्जी (फुटकी) पक्षी का जोड़ा प्रतिवर्ष घोंसला बनाता है और अपने बच्चों को इसी में पालकर बड़ा करता है। उनके गार्हस्थ-जीवन के सुख को मैं पड़ा-पड़ा यहीं से देखा करता हूँ। उन पक्षियों का खयाल है कि यह कुटिया उनकी है। सामने की दीवार में प्रतिवर्ष लखैरियों को झींगुर पकड़कर खींचते देखता हूँ। उनकी भी यही भावना हो सकती है कि यह कुटिया उनकी है। और भी ऐसे कितने ही प्राणी हैं; जो इस कुटिया पर अपना इतना ही अधिकार समझते हैं। रही मेरे यहाँ पड़े रहने की बात, सो यह आवागमन तो बना ही रहता है। यह संसार-चक्र ऐसा ही चला करता है और 'उसकी महफिल का कभी खाली मकां होता नहीं'।"

रोगी महाशय की इस दार्शनिक वृत्ति पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सा विचित्र रोग है, जिसने उन्हें चारपाई पर कस कर रख छोड़ा है और बुद्धि के विकास पर तनिक भी आँच नहीं आने दी है ? मैंने अब तक जितने भी प्रसंग छेड़े, उन सबको रोगी महाशय ने बच्चों

की-सी बातें समझा। जिधर मैं चलता, उधर ही मुझ पर मात-सा हो जाता। मैं उनसे उनकी बीमारी के बारे में पूछना चाहता था और उन्हें बताना चाहता था कि वह किसी बढ़िया अस्पताल में जाकर अपना इलाज करावें। ढंगों से मालूम होता था कि उन्होंने गाँव की जड़ी-बूटियों के सहारे रहकर अपना रोग बिगाड़ लिया है, पर कुटिया में रखे अँग्रेजी विश्वकोष तथा अन्य बढ़िया पुस्तकों और साथ ही रोगी की विलक्षण बातों से मुझे अपनी आशंका पर भ्रम भी हो रहा था। फिर रोगी के सचेत मन को कैसे अपनी ओर करता? उठने की इच्छा न होती थी, उधर खाने का अड़ंगा उन्होंने लगा दिया था। सच बात तो यह थी कि उस समय मैं भूख से व्याकुल हो रहा था और तबीयत करती थी कि खेत में से पके टमाटर तोड़कर खाऊँ। मैं कुछ सोच ही रहा था कि रोगी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "आप किस स्कूल में पढ़े थे?"

पढ़ाई-लिखाई-सम्बन्धी प्रश्न होने पर बड़ा सतर्क हो गया। शिक्षा-सम्बन्धी दार्शनिक और व्यावहारिक बातों पर मुँह की न खाऊँगा, इस खयाल से मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"खुर्जा हाईस्कूल में।"

"खुर्जे के किस हाईस्कूल में?" रोगी ने मेरी ओर आँखें गढ़ाते हुए कहा।

"जे० ए० एस० हाईस्कूल में।"

'किस सन् में?"

"सन् १९१९ में।"

"अरे यार, यों क्यों नहीं कहते कि तुम हाकी के खिलाड़ी अमुक........ हो।"—रोगी ने प्रफुल्लित होकर कहा। अपना नाम सुनकर मैं अवाक् रह गया और कुर्सी को कुछ पीछे हटाकर मैंने विस्मय से पूछा—"क्या आप भी वहीं पढ़ते थे? आपका नाम?"

"मेरा नाम जगन्नाथ है।"

"बस-बस, मैं समझ गया। पं० जगन्नाथ शर्मा और हेडमास्टर मि० माथुर के शब्दों में 'मार्निंग पोस्ट'। परमात्मा की अद्भुत लीला है! आज हम लोगों का कैसा मिलन हुआ! मैं तो आपको पहचान भी न सका। आपके कारण तो स्कूल की साहित्य-सभा में जान-सी पड़ गई थी, पर भाई जगन्नाथजी

यह तो वताइए कि आप कबसे बीमार हैं और किसी बढ़िया अस्पताल में दाखिल होकर अपना इलाज क्यों नहीं कराते ? लखनऊ में मेडिकल कालेज में मेरे एक रिस्तेदार हैं, वहीं किसी प्रकार चलो। मैं साथ चलकर सब प्रबन्ध करा दूँगा। बढ़िया डाक्टरों के परामर्श से इलाज होगा।"

"अच्छा-अच्छा, अब स्नान करो। मेरी कहानी लम्बी है। खाना खाने के बाद बातें होंगी।"

× × ×

पं० जगन्नाथ ने अपनी हार्दिक व्यथा को कुछ रोकते हुए कहा—"गत चौदह वर्ष से मैं बीमार हूँ और तेरह वर्ष से इसी प्रकार इसी आसन पर पड़ा हूँ। पहले के चार-पाँच वर्षों में हाथ-पैर कुछ काम करते थे। मैं उन्हें पसार भी लेता था, अब वे भी रूठ गए हैं। बीमारी की क्या कहूँ ! पहले-पहले छाती पर कुछ छाले उठे, बस जले के फफोले से। सबका खयाल हुआ कि मकड़ी फर गई है, इसलिए घर पर ही साधारण दवाई-दारू होती रही। मैं चलता-फिरता था। धीरे-धीरे छाले ऊपर को बढ़े, साल-भर के भीतर वे मुँह पर फैल गए। मुँह पर खुरण्ट-से पड़ गए। सन् १९२० में तो फफोलों का ऐसा प्रकोप हुआ कि वे सारे शरीर पर फैल गए। हथेली और पैरों के तलुओं तक पर वे निकल पड़े। मैं चारपाई पर गिर गया।

"आप इलाज की कहते हैं और डाक्टरी इलाज की सिफारिश करते हैं ? मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि डाक्टरी इलाज इस गरीब मुल्क के लिए किसी प्रकार भी हितकर नहीं है। लोग विलायती कपड़ों का तो बहिष्कार करते हैं, और इस प्रकार विदेश में जाने वाले करोड़ों रुपयों को बचाना चाहते है; परन्तु कपड़ों से तो तन ही ढँकता है, औषधि का प्रभाव तो आत्मा पर भी पड़ता है। औषधियों के दाम में विदेश जाने वाले करोड़ों रुपयों की रोक के लिए आप क्या करते हैं? जितने भी डाक्टर हैं, वे स्वराज्य-प्राप्ति में बाधक हैं। परोक्ष रूप से दूषित पूँजीवाद के समर्थक हैं। देश के संपत्ति-रूपी वृक्ष के लिए दीमक...."

बात काटकर मैंने, "पर आपने उन देश-द्रोहियों से इलाज भी कराया ? आपको मालूम होना चाहिए कि राष्ट्र की आत्मा—हमारे सब कुछ—और संसार को झूठी सभ्यता से मुक्त कराने वाले महात्माजी के प्राणरक्षक डाक्टर ही थे, आयुर्वेद-विशारद और होमियोपैथ नहीं।"

"अच्छा, आपका खयाल है कि 'अपैण्डिसाइटिस' का आपरेशन करके महात्माजी की जान ऐलोपैथ डाक्टरों ने बचाई ? खूब ! क्या कभी कोई व्यक्ति अपैंडिसाइटिस का उचित आपरेशन होने पर भी नहीं मरा ? गाँव में कभी-कभी भयंकर रोग जादू-टोने के विश्वास से अच्छे हो जाते हैं, तो फिर क्या गाँव का जादू-टोना ऐलोपैथी से बढ़कर नहीं हुआ ? सुनिए, एक बार शिवाजी महाराज ने अपने दान-पुण्य की बड़ाई, दवी जबान से, अपने गुरु समर्थ रामदास से की। रामदास को शिवाजी के उस कथन में अहंकार की गंध आई। शिवाजी को लेकर वह एक पत्थर के पास गए और शिवाजी से उस पत्थर को तुड़वाया। पत्थर के भीतर दराज में बैठी एक मेंढ़की निकली। उसकी ओर संकेत करते हुए समर्थ रामदास ने कहा—"क्या इसको भी तू खाना देता है ?" शिवाजी गुरु के चरणों पर गिर गए, और उनका अहंकार नष्ट हो गया।

"खैर, मैं तो अपनी बीती सुना रहा हूँ। आप-बीती से ही मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि डाक्टरी इलाज भारतवासियों के लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टि से हानिकारक है। अंग्रेजी इलाज शीत प्रधान देशों के लिए ठीक हो सकता है। हम लोगों के खून में शराब का प्रभाव बहुत कम क्या, है ही नहीं। एक कुनैन को ही लो। जेठ, अषाढ़ में कुनैन खाओ, फिर देखो कैसे उल्लू बनते हो। छोटे बच्चों को कुनैन खिलाना उन पर अत्याचार करना है। मेरे एक भाई हैं, जो बचपन में बड़े ही नटखट थे। कुनैन की शीशी कुत्ते के मुँह में उडेल देते थे, फिर कुत्ते का लपर-लपर करके झाग डालना देखकर हँसा करते थे। हाँ, आप इंजेक्शनों की प्रशंसा करें, तो उसके लिए मैं कहूँगा कि इंजेक्शनों ने ही मेरी यह दशा कर रखी है। आगरे के अस्पताल में मैं रहा, बड़े-बड़े योग्य डाक्टरों ने मुझे देखा और कई बार खून की परीक्षा भी हुई। पहले तो हम लोगों के पास रुपया है ही नहीं, जोड़-तोड़ करके जर्मनी से इंजेक्शन के ट्यूब मँगा-मँगाकर मेरे इंजेक्शन लगाए गए। मेरी टाँगों और बाँहों की सब नसें फाड़ डाली गईं। सौ के लगभग इंजेक्शन लगे, पर कुछ न हुआ और रोग असाध्य कहकर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मेरे हाथ-पैर जो बेकार हो गए हैं, उसका मुख्य कारण है—इंजेक्शन द्वारा दी गई विषैली औषधियों की प्रतिक्रिया।

"मैंने यूनानी इलाज भी कराया और कराया हकीम अजमलखाँ से। कुछ लाभ भी हुआ, पर बाद में बीमारी का प्रकोप होने से उनकी दवा कुछ

न कर पाई। आयुर्वेदिक चिकित्सा भी हुई। सबसे पहले होनी चाहिए थी होमियोपैथी—वह हुई सबसे आखिर में! चिकित्सा अब भी होती है, बस, बहलाने को; पर जिसने रोग दिया है, वही भले ही अच्छा कर दे। दैवी शक्ति का कोई अपमान नहीं कर सकता। यों तो प्रत्येक रोग की दवा है और अचूक दवा है, पर मौत की दवा नहीं है और न होनी चाहिए।

"आप पूछते हैं कि अब क्या हालत है? सो क्या बताऊँ। शरीर का कोई भाग—आँखों की पलकें तक—ऐसा नहीं, जहाँ फफोले न हों। जुआर के बराबर फुँसी उठती है और रातभर में वही बढ़कर फफोला बन जाती है। एक ओर से फफोले अच्छे होते हैं और दूसरी ओर उठते आते हैं। सारे शरीर पर खुरंटों की मोटी तह जमती जाती है और खुरंटों के नीचे का पीब खून को सुखाता जाता है। जब सब प्रयत्न निष्फल रहे, तब मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरा रोग कर्म-भोग है, और पूर्व-जन्म के पापों का प्रायश्चित है। इस जन्म में मैंने ऐसा कोई पाप नहीं किया, जिसका इतना विकट प्रायश्चित हो। मेरा यह भी खयाल है कि मेरे पूर्व-जन्म के पापों में मेरे कुटम्बी—विशेषकर माता और भाई—भी शामिल हैं। संभवतः मैंने किसी निर्दोष का वध किया हो और मेरे कुटुम्बियों ने उसमें किसी प्रकार योग दिया हो, इसीलिए शायद सेवा-शुश्रूषा के रूप में वे अपना प्रायश्चित कर रहे हैं, नहीं तो मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी बीमारी का क्या रहस्य है!"

"आप अविवाहित हैं न?"

"हाँ, किसी स्त्री से मेरा विवाह नहीं हुआ।"

मुस्कराकर मैंने कहा, "इसके क्या मानी?"

"इसके मानी यह कि मेरा विवाह तो हुआ है—स्त्री से नहीं, वरन् बीमारी से। सो मेरी यह पतिपरायण बीमारी संग सती होगी।"

"आपकी देखभाल और सेवा कौन करता है?"

"मेरे ऊपर सभी कृपा करते हैं। आपसे ही पानी माँगूँ तो क्या आप मुझे पानी न देंगे? भाई है, छोटे भतीजे हैं, भतीजियाँ हैं। अपने माँ-बाप की अपेक्षा वे मुझे अधिक प्यार करते हैं।"

"तो फिर आप किसी पर क्रोध तो नहीं करते होंगे और वर्षों के ऐसे अभ्यास से आप में से क्रोध का अंश तो नष्ट हो हो गया होगा?"

इस प्रश्न ने रोगी के मर्मस्थान पर चोट कर दी। उनकी आँखें छल-छला आईं और आँखों में से दो मोती उनके सूखे और खुरण्ट-युक्त कपोलों पर ढलक गये। मैं सकपका-सा गया। घबराकर मैंने पूछा—"क्यों मुझसे ऐसी कौन-सी धृष्टता हो गई, जो आपको इतनी वेदना हुई ?"

आँसुओं को रोकते हुए उन्होंने कहा "आपसे कोई धृष्टता होती भी तो मैं उसका खयाल नहीं करता। मेरा जीवन दूसरों पर आश्रित है, इसलिए मुझे तो सभीको प्रसन्न रखना पड़ता है। आपके प्रश्न से मुझे माँ का स्मरण हो आया। उनके देहावसान को अभी पाँच ही वर्ष बीते हैं। मैं भी क्रोध किया करता था। नाराज हुआ करता था और रूठ भी जाया करता था। किसपर ? माँ पर। सुबह-शाम पाखाना-पेशाब वही करातीं थीं। वह बड़ी तपस्विनी थीं। अपने अध्यवसाय और घोर परिश्रम से उन्होंने हमें पाला था, प्रतिदिन प्रातःकाल तीन बजे उठतीं। वृद्धा हो गई थीं, परन्तु हम तीनों भाइयों में से कोई भी उन्हें सुख न दे पाया। घर का काम करतीं और मेरी परिचर्या भी। कभी उनके आने में देर हो जाती तो मैं उनसे बिगड़ पड़ता, और जब खाना लातीं, तब मैं रूठ जाता तो मेरी चारपाई की पाटी पकड़कर बैठ जातीं, और मनाकर और पुचकारकर कहतीं—'ले बेटा, रोटी खा ले। मुनुआ रूठते नहीं हैं, खा ले। मेरे मरने के बाद तुझे कोई नहीं मनायगा। माँगेगा तो खाना मिल जायगा, नहीं तो मनाने वाला मेरे बाद कोई नहीं बैठा।' जब कभी मुझे कोई कष्ट होता है और समय पर मेरा काम नहीं होता—न जाने क्यों मेरी प्रत्येक बात का समय बँध गया है, और एक मिनट की देरी में कष्ट होने लगता है—तब मैं घबराकर चुप-चाप रोने लगता हूँ और माँ की याद में हिचकी बँध जाती है। तब ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गीया माँ ऊपर आकाश से मुझे पुचकारकर सांत्वना दे रही हैं। उस समय मुझे माँ के ये शब्द 'मेरे बाद मनाने वाला कोई नहीं बैठा' स्मरण हो आते हैं और माँ की और भी याद आती है। आपके प्रश्न से माँ की याद आगई जिससे मेरा हृदय भर आया। रोकने की बहुत कोशिश की, पर बाँध टूट ही तो गया।"

"तो क्या आपकी सेवा अब ठीक नहीं होती ?"

"होती है, पर मुझे भाइयों, भावजों और नौकरों पर अब उतना

अधिकार नहीं। अब ऐसा कोई नहीं, जिससे मैं रूठ सकूँ। मुझे अब इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि मेरी किसी बात से कोई नाराज न हो जाय। पहले मुझमें बालकों की सी सरलता थी और अब वूढ़ों की-सी समझ और चतुराई है। हाँ, बच्चों पर शासन करता हूँ। वे अपनी सब शिकायत मुझसे ही करते हैं—'चाचा हमें यह चाहिए। भैया मुझे मारता है। चाचा, तुम पड़े क्यों रहते हो ?' बच्चों की ऐसी बातों से मुझे आन्तरिक सुख मिलता है। मेरी भी अब यह दशा हो गई है कि जब बच्चे यहाँ खेलते-कूदते रहते हैं, तब मुझे अच्छा लगता है। उनकी बाल-लीला का आनन्द मैं पड़े-पड़े लिया करता हूँ। एक बच्चे को, जिसका प्यार का नाम पल्लू है, मैंने समझाया कि पल्लू, सवारी गाड़ी जब यहाँ होकर निकलती है, तब वह तुझे बुलाती है, और कहती है—'पल्लू, तुम आइ जाउ; पल्लू, तुम आइ जाउ।' पल्लू ढाई वर्ष का होगा। उसने पूछा—'चाचा, मोइ टेत्ति है ऐ ?' मैंने कहा—'हाँ, तुझे ही टेरती है और किसी को नहीं, और तू कह दिया कर—'आजु तू चली जा, कल्लि हूँ आंग्गो।' बस अब जब, कभी कोई सवारी गाड़ी निकलती है तो पल्लू बोल उठता है—'आजु तू चली जा, कल्लि हूँ आंग्गो।' यदि कोई बच्चा कह देता है कि 'कल्लि हूँ आंग्गो' तो पल्लू रो पड़ता है और कहता है—'वु तो मोइ टेत्ति ए।' तब सब बच्चे—गाँव के और बच्चे भी—हरएक सवारी गाड़ी को देखकर बोल उठते हैं—'आजु तू चली जा, कल्लि पल्लू आवैगो।'

"एक दिन बड़ी मजेदार बात हुई। पल्लूसाहब मचलकर रो रहे थे कि इतने में सवारी गाड़ी आ गई। फिर क्या था ! अश्रु-बूँद बिन्नियों पर मोतियों की भाँति गुहकर रह गई, और पल्लू साहब लगे कहने—'आज तू चली जा, कल्लि हूँ आँग्गो।' मैंने उस बाल-लीला में नन्द-यशोदा का-सा सुख लूटा है।"

इन बातों के दौरान एक आदमी कुटिया के सहारे आ खड़ा हुआ। जगन्नाथ ने उसकी ओर देखकर कहा—"कौन, मोहना ? मसहरी पर रुपये रखे हैं, उठा ले। इस महीने तक का तेरा हिसाब बेबाक हो गया।"

मोहना अपना मासिक वेतन लेकर चला गया, तब मैंने पूछा—"क्या नौकरों का वेतन आप ही देते हैं ?"

"अजी, क्या बताऊँ। माँ के स्वर्गवास के बाद घर का सारा प्रबन्ध मेरे

ही ऊपर है—'होम डिपार्टमेंट' का इंचार्ज मैं ही हूँ। कोई भी नौकर अपना वेतन और किसी से नहीं माँगता, सब मुझसे ही माँगते हैं। गाँव के आदमी यदि किसी चीज को माँगते हैं, तो मुझसे ही। घर के जो चलन चलते हैं, वे सब मेरे परामर्श से। और की कौन कहे, मेरे भाई तक कोई चीज माँगते हैं, तो मुझसे। हमारे यहाँ एक बार एक अंग्रेज सज्जन आकर ठहरे तो कमोड का प्रबन्ध मुझे ही करना पड़ा।''

आश्चर्य से मैंने कहा, ''आपने कैसे किया? क्या आपकी जान-पहचान आपके भाइयों की अपेक्षा अधिक है?''

''हाँ जी, इस इलाके में मेरा रुसूख बहुत है। बस, मैंने स्टेशन पर खबर कर दी और वहाँ से ठेले पर कमोड आ गया।''

''तब तो आपका समय किसी-न-किसी तरह कट ही जाता है।''

''समय कटता नहीं है, वरन् वह हमें ही काटता है। आपकी दृष्टि से विचार करने पर भी यही कहना पड़ता है—

'ऐ शमअ तेरी उम्र तबई है एक रात,
हँसकर गुजार या इसे रोकर गुजार दे।'

''फिर खास बात यह है कि बहुतेरे मुझसे भी खराब हालत में हैं। उन्हें वे सुख प्राप्त नहीं, जो मुझे हैं। आप शिकार खेलते हैं और घूमते हैं, पर इससे आप यह न समझें कि श्रवण और घ्राणशक्ति आपकी ही प्रबल हैं। चलने-फिरने की मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। मैं इस योग्य भी नहीं कि रेल या मोटर में रखकर कहीं ले जाया जाऊँ, इसलिए मेरे कान, मेरी नाक और स्मरण-शक्ति पर कुछ धार सी धर दी गई है। पैरों की आहट से मैं पहचान लेता हूँ कि कौन सा परिचित व्यक्ति है। बकरी और बैल के खुरों की आहट से मैं उन्हें पहचान लेता हूँ।

''आप खयाल करते होंगे कि घ्राणशक्ति किस प्रकार तीव्र हो सकती है। सुनिए, जब आमों पर बौर आता है, तब किसी के बिना बताये ही मुझे मालूम हो जाता है कि आमों पर बौर आ गया। पवन के मन्द-मन्द झोंके जब चलते हैं तब बौर की मोहक गंध वायु के झकोरों से मेरे पास तक आ जाती है। पपीतों से आगे नारंगियों के पेड़ देखिए। उन पर जब कलियाँ आती हैं, तब मैं यहाँ पड़े-पड़े मालूम कर लेता हूँ कि नारंगियों तक पौधों पर फूल आ रहे हैं।''

"आपको किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता है ?"

"मुझे, कुछ नहीं चाहिए। परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि बीमारी की नरक-यातना में उसने मुझे ऐसे साधन दे रखे हैं ! बस, मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरी सेवा करने वाले फूलें-फलें और सबके सामने ही मैं माँ से जा मिलूँ। मैं दुख से नहीं कह रहा हूँ, परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि चौदह वर्ष की तपस्या बहुत होती है। राम को भी चौदह वर्ष का वनवास हुआ था। तबीयत से चाहता यह हूँ कि या तो अब अनन्त नींद में सो जाऊँ, या फिर चल-फिरकर बीमारों और दुखियों की सेवा कर सकूँ। मैं इस बात को खूब महसूस करता हूँ कि रोगी और दुखी से मीठे और सहानुभूति पगे शब्द बोलने से ही उसे काफी सांत्वना मिलती है। वह जानता है कि उसके दुखों को समझने वाले लोग हैं।"

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और आपकी कुटिया ने तो मुझे मोह लिया है। बताइए, इसकी बनवाई में क्या खर्च पड़ा ? मेरे यहाँ खेती होती है।"

"आप किसान हैं, या जमींदार ?"

"सोलहो आना काश्तकार।"

"तब फिर आपको ऐसी कुटिया बड़ी महँगी पड़ सकती है।"

"क्यों ?"

"इसलिये कि कानूनन कोई भी काश्तकार खेत पर मकान नहीं बना सकता। खेती-बारी के काम के लिए झोंपड़ा या मकान बनाया जा सकता है। आप देखते हैं, यह कुटिया भी झोंपड़ा है। छत के स्थान में छप्पर है। हमारे बैल भी यहीं बँधते हैं और खेती के औजार भी यहीं रखे जाते हैं। चारा भी यहीं कटता है। पर जमींदार साहब ने बेदखली लगा दी कि हम लोगों ने रहने के लिए मकान बनाया है। वर्षों मुकदमा चला। मजिस्ट्रेट के यहाँ से हम हार गये। जमींदार ने अदालत के जोर से खेत पर अधिकार कर लिया और मेरे लिए कह दिया कि हम नहीं जानते, इस रोगी को फेंक दो। मुझे उस समय मालूम हुआ कि मेरे साथ पक्षी दया कर सकते हैं, वायु अपने झकोरों से बौर की सूचना दे सकती है, पर जमींदार मुझ जैसे रोगी को एक झोंपड़े में नहीं रहने दे सकता। बताइये, मैं कहाँ जाता ? घर पर कोई ठौर न था ! यदि मैं वहाँ ले जाया भी जाता तो अगले दिन मेरी लाश निक-

लती। इसलिए मैंने कह दिया कि मैं अपनी तबीयत से कहीं न जाऊँगा और न मेरे घरवाले ही मुझे उठावें। जमींदार और जमींदार के आदमी उठाकर मुझे कहीं रख दें। किसी का साहस मेरी चारपाई छूने का न हुआ।

"अपील की गई। वर्षों की मुकदमेबाजी और हजारों के खर्च के बाद हम जीते। अब आप इस कुटिया का मूल्य कूतिये।"

"आपके जमींदार बड़े ही मूढ़ और दुष्ट प्रतीत होते हैं।"

"मूढ़ता और दुष्टता की परिभाषा तो आप जानें, पर उनका कुल तो बड़ा शिक्षित है। कोई वकील है, तो कोई डाक्टर और कोई कालेज का प्रोफेसर।"

"ऐं? आप क्या कहते हैं? विश्वास नहीं होता।"

"न कीजिए विश्वास। जनाब, यहीं तक हद नहीं है। जमींदार ने हम पर चोरी तक का मुकदमा लगाया—खेत काटने की चोरी का—मुकदमे के दौरान ताने मारे कि एक भाई तो मुर्दा पड़ा है, दूसरे को सजा कराकर छोड़ेंगे और तीसरे को पैरवी कराते-कराते रगड़ देंगे। इस प्रकार सरकश काश्तकारों का अन्त करके हुकूमत करेंगे, पर अंतरिक्ष से विधाता उनके मद पर हँस रहा था, क्योंकि हम जीते। खेत हमें मिल गया।"

'तो फिर आप जमींदार और जमींदारी को कैसा समझते हैं?"

"जमींदारी का पेशा बहुत बुरा है, और देश का भला तब तक न होगा, जब तक जमींदारी मिटा या उठा न दी जायगी। जमींदार लोग निखट्टू हो गये हैं, और समझते हैं अपने-आपको जमीन का मालिक।"

"तो क्या आप जमींदारों को जमीन का मालिक भी नहीं समझते?"

"भाई साहब, मैं जमींदारों को जमीन का मालिक हरगिज नहीं मानता, और वह समय दूर नहीं, जब जमीन के जमींदार वे ही माने जायँगे, जो खेत जोतते हैं, जो खून-पसीना एक करके खेतों से आत्मीयता पैदा कर लेते हैं। और ये बीच के एजेण्ट—जमींदार, बस, लगान वसूल करके अपना आधिपत्य जमाते हैं। यह सब धाँधली है। कमाते हैं किसान और गुलछर्रे उड़ाते हैं—सो भी विदेशों में मोटरों और हवाई जहाजों में—जमींदार। सुनिये, यदि किसानों को खेत का किरायेदार ही समझा जाय और जमींदार को खेत का मालिक तो जमींदार को खेत की उन्नति, सिंचाई और अन्य कामों के लिए खर्च करना चाहिए। किसी

मकान में लोग किराये पर रहते हैं तो मकान की मरम्मत और सफाई किरायेदार के जिम्मे नहीं होती, वरन् मालिक-मकान के जिम्मे होती है। अब आप बताइये कि जमींदार खेत के लिये क्या करते हैं ?

"यही नहीं, बेगार और अत्याचार तो साधारण-सी बात है। यदि किसान जमींदार या जमींदार के पक्ष को वोट नहीं देता, तो वह सरकश करार दिया जाता है। बेदखली तक की नौबत आती है और बेचारा सैकड़ों ढंग से दिक किया जाता है, इसलिए यदि आप देश में वास्तविक स्वराज्य चाहते हैं, तो इस जमींदार-प्रणाली का अन्त कीजिए। खेतों की उपज, पशुओं की नसल और साग-भाजी की पैदावार की ओर जमींदारों का तनिक भी ध्यान नहीं है। उनकी कमाई का स्रोत है खेती, और उसकी उन्नति वे करते हैं विलासिता और अत्याचार से। यह परिस्थिति भयंकर है।

"एक बात और। जो धरती का मालिक बनकर रहता है, वह नष्ट होता है, और उसे नष्ट होना भी चाहिए। धरती माता है। अपनी सेवा करने से वह प्रसन्न होगी। किसान उसे माता समझता है, और जमींदार उसे रखैल स्त्री। बताइए, किसका सम्बन्ध अधिक पवित्र है ?"

मैंने कहा, "आपके हृदय में जमींदारों के प्रति बड़ी कटुता है।"

वह बोले, "मैंने सिद्धान्त की बात कही है। एक हिस्सेदार जमींदार को छोड़कर शेष सब अपने जमींदारों से हमारी अब मित्रता है। वे हमारे यहाँ मित्र की भाँति ठहरते हैं, पर सिद्धान्त की बात तो साफ कहनी चाहिए। हाँ, जो जमींदार अपना समय खेती और किसानों की भलाई में लगाते हैं, उनकी ओर से किसी को शिकायत नहीं हो सकती, पर जनाब, जब विद्रोह और असन्तोष की प्रचण्ड ज्वाला फूट निकलती है. तब सूखी लकड़ियों के साथ गीली भी जल जाती हैं। फोड़े में जब चीरा लगता है, तब पीव के साथ अच्छा माँस भी कट जाता है, इसलिए जब जमींदारी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन उठेगा, तब भले जमींदारों पर भी चपेट होगी।"

मैंने कहा, "क्या ही अच्छा हो, आप नीरोग होकर अपने विचारों का प्रचार करें ?"

अब बोले, "क्या आपके आशीर्वाद में स्वार्थ-भावना नहीं है ? परमात्मा को मंजूर होगा, तो सब कुछ होगा, पर मेरा विचार तो लोगों की सेवा

करना है। कदाचित् इस जन्म में वह सेवा बदी नहीं, सो अगले जन्म में देखा जायगा।"

"क्या आप गाँव में रहकर सेवा करना चाहते हैं ?"

"अरे भई, मैं क्या सेवा करूँगा ! इस समय तो मैं सेवा करा रहा हूँ, पर मेरा विचार है कि स्वातंत्र्य-युद्ध की लड़ाई के लिए गाँवों में मोरचे डालने चाहिए। पढ़-लिखकर जो लोग कमाई या नौकरी के लालच से शहरों में जा बसते हैं, गाँव के लिए वे मृतक के समान हैं। किसानों के हित की गाथा गाने जो लोग शहर में रहते हैं, वे सब बहुत अंशों में ढकोसलेबाज हैं। गाँव में रहकर मालूम होता है कि पुलिस का जुल्म किसे कहते हैं। पढ़-पढ़कर लोग गाँव छोड़ते चले जाते हैं और देश की शक्ति घटा रहे हैं। गाँवों को तो ऐसा बनाना चाहिए कि वे रहने योग्य हो जायँ।"

"आप तो प्रत्येक विषय पर काफी जानकारी रखते हैं।"

"इसमें जानकारी की क्या बात है ? साधारण-सी बातें हैं। इन पर तो मैं घंटों बातें कर सकता हूँ।"

काफी देर हो गई थी। चलने को तबीयत तो न करती थी, पर स्थान पर पहुँचना था, इसलिए रोगी से मैंने विदा ली।

चलते समय उनका दिल भर आया और कहने लगे—"भाईसाहब, कोई आ जाता है तो मन लग जाता है। इस कुटिया पर बहुत-से भले व्यक्ति आते हैं, और उनकी बातें मैं भी सुना करता हूँ। मेरी जिन्दगी के वे क्षण बड़े ही पुनीत होते थे, जब स्वर्गीय गणेशजी यहाँ आकर किसानों की भाँति बात करते थे।"

मैंने कहा, "गणेशशंकर विद्यार्थी ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ।"

उस समय मुझे स्वर्गीय विद्यार्थीजी के असली महत्त्व का पता लगा। जो दीन-से-दीन और दुखी-से-दुखी प्राणी को कुछ सांत्वना दे सके, उसके दुख-समूह में से कुछ हिस्सा बँटा सके, कुछ कमी कर सके, वही दरअसल महापुरुष है।

पड़ाव पर लौटते समय रास्ते भर यह सोचता आया कि यदि कर्म-सिद्धान्त है, तो जगन्नाथजी का दूसरा जन्म न होगा। पहले जन्म के पापों को वह भोग रहे हैं और उनके क्षय होते ही वह ब्रह्म में लीन हो जायँगे।

: २ :

हरनामदास

ऋषीकेश और लक्ष्मण झूला के बीच, टिहरी राज्य का एक स्थान है मुनि की रेती। गंगाजी पर बसे होने पर भी वह अब ऊजड़ सा हो गया है। स्टेट गैरेज और कारखाने के पास खड़े होने से वह काटने दौड़ता है; पर सन् १९२२-२३ में वहाँ खासी रौनक थी। वह मधुमक्खी का छत्ता-सा बना हुआ था। डाँडियों के बनने और चिड़ियाघर के जीवों को देखने के लिये वहाँ यात्रियों के ठट्ठ-के-ठट्ठ लग जाते थे। बरसात में बबूल के पेड़ पर लगे बया के घोंसलों में जैसी चहल-पहल होती है, वैसा ही कुछ समा मुनि की रेती में था। एक उपनिवेश-सा बस रहा था। मीठी चीज पाकर जैसे चींटियाँ चारों ओर से आ जाती हैं, वैसे ही न-मालूम कहाँ से, वहाँ दूकानदार आ गये थे। किसी की गुड़-चने की दुकान थी, तो कोई हलवाई बना बैठा था। तेल की पूरियाँ और तम्बाकू की भी काफी बिक्री थी। परचूनी वालों को तो अवकाश ही न मिलता था। कुली और मजदूर दाल-आटा ले कर गंगा किनारे रोटी बनाने लगते थे। दोपहर और शाम को मुनि की रेती में यह मालूम होता था, मानो सेना पड़ाव डाले पड़ी है।

मुनि की रेती में अनेक दूकानदार थे, पर उन सबकी जान था एक पंजाबी पकौड़ी वाला। उसके पास दुकान में माल अधिक न था। एक कढ़ाई, दो लोटे, एक थाली, एक करछी और सेर दो सेर बेसन—बस, यही सामान उसकी दुकान पर था। दिन में दो बार कढ़ाई चढ़ाता, और बात-की-बात में अपनी पकौड़ियाँ बेच लेता। स्वभाव का वह इतना अच्छा था कि चलते आदमी से उसकी दोस्ती हो जाती थी। एक बार जिसने पकौड़ियाँ खाईं, वह रोजाना ही उसकी दुकान पर आता। ठलुआ लोग तक उसकी दुकान पर गप मारने आ जाते, और उसी बहाने पैसे-दो-पैसे की पकौड़ी खरीदते। बात यह थी कि पकौड़ी वाला दिल का

धनी था। दीन-दुखियों को बचो-खुची पकौड़ी बाँटना, आस-पास के रोगियों की खबर-सुध लेना, सेवा-शुश्रूषा करना, भूखे-प्यासे को खाना देना और लतीफे सुनाना उसके स्वभाव में शामिल था। अक्खड़ वह इतना था कि ठीक बात पर राज्य के दीवान और उसके रिश्तेदारों तक की परवा न करता था। भलों के लिए वह कपिला गाय था, और दुष्टों के लिए नंगी तलवार। बेलौस आदमी था, इसलिए किसी की परवा न करता था। उसकी लोकप्रियता और अक्खड़पन की बातें राज्य के दीवान तक पहुँचीं, और पहुँचीं शिकायत के रूप में; पर उसने उन शिकायतों की उपेक्षा ही की। अलमस्त पकौड़ी वाला अपनी दुकान करता रहा, और गंगाजी की धार के समान उसकी बातें और लतीफेबाजी चलती रहीं।

× × × ×

जनवरी सन् १९२४ के एक प्रातःकाल को पकौड़ी वाले ने अपनी भट्टी गरम की। हरिद्वार, ऋषीकेश और मुनि की रेती का जाड़ा और तिस पर 'ढाड़ू'[1] का वेग! जाड़ा मज्जा तक को ठिठरा रहा था। पकौड़ी वाला आग तेज करके तेल का बर्तन उठाने ज्यों ही मुड़ा त्यों ही दुकान के सामने खड़े एक संन्यासी पर उसकी नजर पड़ी। वह संन्यासी दुकान के सामने होकर प्रतिदिन टहलने जाया करते थे, और जिज्ञासु तथा कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उधर देखा करते थे। पकौड़ी वाला भी उनकी ओर देख कर अपने काम में लग जाता था। संन्यासी की आकृति पकौड़ी वाले को देखकर ऐसी हो जाती थी, मानो उनकी स्मृति किसी भूले नाम को स्मरण कर रही हो। किसी-किसी दिन वह संन्यासी पकौड़ी वाले की दुकान के सामने ठिठक भी जाते थे; पर रुक कर उससे बातचीत करने का साहस न होता था। पकौड़ी वाले की आकृति उस आदमी से मिलती थी, जिसके वे अतिथि रहे थे। और उनके आतिथ्य में जिसने सात-आठ हजार रुपया खर्च कर दिया था; पर उतना बड़ा आदमी अलादीन के लैम्प के जादू से ही उस तुच्छ पकौड़ी वाले की हैसियत में आ सकता था—ऐसी शंका के कारण संन्यासी उस पकौड़ी वाले से कुछ न पूछते थे। उसकी सूरत तो उनके वैभवशाली

---

[1] हरिद्वार और ऋषीकेश के आसपास प्रातःकाल चलने वाली हवा।

मेजबान की-सी थी। वही छरहरा बदन, वही चेचकरू चेहरा और वही परिचित स्वर ! पर वह आन और शान न थी। छै-सात मोटर रखने वाले और लाखों के व्यापारी से पकौड़ी वाले की सूरत क्यों मिलती है ? क्या वह उनके धनीमानी मेजबान का कोई भाई है ? क्या भाग्य-चक्र के चपेटों से उसका कोई भाई गंगा की शरण में, पहाड़ के सहारे, अपने अन्तिम दिन काट रहा है ? इन सब प्रश्नों का कोई उत्तर न मिल रहा था, इसलिए, संन्यासी ने कई दिन के सोच-विचार के बाद उस दिन पकौड़ी वाले से ही बात करने की ठान ली, और दुकान के सामने संन्यासी को खड़ा देख कर पकौड़ी वाला मुस्करा कर बोला—"कहिये स्वामी जी महाराज ! क्या जाड़ा लग रहा है ? तापना चाहो, तो भट्टी के पास आकर बैठ जाओ।"

संन्यासी—"जाड़े की कोई चिन्ता नहीं। वह तो रोज की बात है। मैं आप से एक बात पूछने खड़ा हूँ। तबीयत नहीं मानती। आपका नाम क्या है, बस, मुझे यह बतला दो।"

पकौड़ी वाला (गम्भीरता से)—"मेरा नाम हरनामदास है।"

नाम सुनते ही संन्यासी महाराज की आँखों के सामने अँधेरा छा गया, और दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर बैठ गये, और विस्मय से पूछा—"बगदाद वाले हरनामदास ?"

हरनामदास—"हाँ, महाराज, बगदाद वाला हरनामदास मैं ही हूँ।"

संन्यासी—"यह क्या बात हो गई ! यहाँ पर इस दशा में कैसे ? यह तो अलिफ लैला की कहानी-सी घटना है ?"

हरनामदास—"मैं रहता भी अलिफ लैला की कहानियों के देश में था। घटना तो ठीक वैसी ही है ; पर मुझे अफसोस जरा भी नहीं। आनन्द भी मैंने लूटा था। कमाया भी मैंने बहुत। सुख और आनन्द का दूसरा पहलू है दुख और कष्ट। जीवन का एक यह भी अनुभव है। खटाई और नमक के खाये बिना मिठाई का मजा नहीं आ सकता। सो स्वामीजी ! उस मिठास का स्वाद इस कड़ुएपन से आ रहा है।"

संन्यासी (आश्चर्य से)—"वह तुम्हारा रुपया और सम्पत्ति क्या हुई ?"

हरनामदास—"स्वामी जी महाराज ! सम्पत्ति की क्या बातें करते हो ! वह तो आती है, और चली जाती है। लक्ष्मी एक की होकर किसी की भी नहीं रही।"

संन्यासी—"भाई, मुझ से तो तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती। कहाँ तुम्हारे दर्जनों टहलुए, और कहाँ आज तुम.... इस दशा में !"

हरनामदास (तनिक हँसते हुए)—"स्वामी जी महाराज ! आप तो ज्ञानवान हैं। आप तो रुपये की ओर देखते हैं। मेरी ओर नहीं। रुपया और सम्पत्तिजन्य वैभव से मैं तो नहीं बदला। उस दशा में मैंने आपकी सेवा सोने के कुछ टुकड़ों से की थी, जो मेरी सम्पत्ति का नगण्य भाग थे—बस, हाथ के मैल के समान, और अब मैं आपकी सेवा अपनी पूरी सम्पत्ति से करने को तैयार हूँ, और नौकरों के स्थान में स्वयं मैं मौजूद हूँ।"

ये बातें सुनकर संन्यासी ने एक ठण्डी साँस ली, और दुकान में आकर भट्टी के सामने बैठ गये। आध घण्टे तक वहाँ तापते रहे और हरनामदास से बातें करते रहे। चाय पीकर वहाँ से वे शोक और चिन्ता-मुद्रा में डूबे चले गये।

× × × ×

सन् १९२७ के आरम्भ में देहरादून में 'हिन्दू-संसार' के मानहानि वाले मुकदमे की सुनवाई हो रही थी। अभियुक्त-पक्ष की ओर से गवाह बुलाने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। मुद्दई के भय से टिहरी राज्य से जो गवाह आ रहे थे, वे अपनी हथेली पर जान रखकर आ रहे थे। जनवरी या फरबरी की किसी रात को वकील के घर पर मुकदमा-सम्बन्धी परामर्श रात भर होता रहा, और दो-एक विषय पर इतना वाद-विवाद हुआ कि प्रातःकाल के छै बज गये। कई मित्र तो लेट रहे। थोड़ी देर के लिए मैं भी आराम-कुरसी पर पड़ रहा, और साढ़े छै बजे कमरे के दालान में बाहर निकला। दालान से लगीं नीचे जाने को सीढ़ियाँ थीं। मेरा कमरे के बाहर निकलना हुआ, और सीढ़ियों पर दो आदमियों का चढ़ना। उन्हें नीचे से ऊपर चढ़ते देख मैं खड़ा हो गया, और वे सीढ़ियों से ऊपर दालान में आ गये। उनमें एक संन्यासी था, और दूसरा साफा बाँधे, छरहरे शरीर का—आकृति और वेष से—पंजाबी। पूछने

की भावना से मैंने उनकी ओर देखा, और साफे वाला आदमी बोला—"बाबू चण्डीप्रसाद वकील की यही कोठी है ?"

मैं—"हाँ, यही है। कहो क्या है ? कहाँ से आये हो ?"

साफे वाला—" 'हिन्दू-संसार' की तरफ से गवाही देने ये (संकेत करते हुए) स्वामीजी आए हैं।"

मैं—(स्वामीजी की ओर देखते हुए)—"स्वामीजी महाराज ! आपका शुभ नाम ?"

साफे वाला—"आपका नाम स्वामी कृष्णाचार्य है।"

मैं—"इस नाम का कोई गवाह 'हिन्दू-संसार' की ओर से तलब नहीं किया गया।"

संन्यासी—"मैं बिना तलब किये हुए ही आया हूँ। हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी मामला है। मैंने जब समाचार-पत्रों में पढ़ा कि अमुक अभियोग लगाया गया है, तब मैंने धर्म की खातिर यह उचित समझा कि मैं स्वयं चलकर गवाही दूँ।"

मैं—"आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि आप घटना-स्थल के गवाह हैं ?"

संन्यासी—"मैं डायरी रखा करता हूँ। आप डायरी देख लें।"

मैं—(डायरी पढ़कर और साफे वाले की ओर सम्बोधित होकर)—"आप कौन हैं ?"

साफे वाला—"आपको मुझ से क्या सरोकार ! स्वामीजी का एक सेवक हूँ।"

साफे वाले की यह रुखाई मुझे पसन्द नहीं आई, और मैं उसके उत्तर को अशिष्टतापूर्ण समझ कुछ कहने ही को था कि इतने में संन्यासी बोल पड़े—"इनका नाम हरनामदास है। पहले ये बहुत बड़े व्यापारी थे। इनका लाखों का कारोबार बगदाद और बसरे में था। अब मुनि की रेती में रहते हैं।"

हरनामदास की बात-चीत से मुझ पर अच्छा प्रभाव न पड़ा, और यह सन्देह होने लगा कि कहीं गुरु-चेले की मिली भगत न हो। मुझे स्वामीजी और हरनामदास की बातों में 'मनतुरा हाजी बिगोयम तू मिरा काजी बिगो'[१] की गन्ध आई।

कुछ दिनों बाद मुझे ऋषीकेश जाने का अवसर पड़ा, और मिस्त्री केसरसिंह की दुकान पर जाकर बैठा ही था कि भीतर से हरनामदास निकला। मुझे देखकर वह बाग-बाग हो गया, और ऐसे मिला, मानों वर्षों से मुलाकात हो। झट से पानी लाया, और हाथ धोने को कहा। मैंने बहुत कुछ कहा कि मुझे हाथ धोने की जरूरत नहीं, पर वह न माना। शीघ्र ही अँगूठे से सोडा की बोतल खोल दी और मेरे हाथ में दे दी। सोडा और लैमोनेड मुझे अच्छा नहीं लगता, पर उस आवभगत के मारे मुझे मन मार के पीना पड़ा। सोडा के बाद फल और मिठाई खानी पड़ी। यह आतिथ्य उस शुष्क मिलन के कारण था, जब हरनामदास स्वामी कृष्णाचार्य को लेकर देहरादून गया था, और आठ-दस मिनट की अति साधारण और वकीलों की सी बातों के उपरान्त मैंने उससे यह भी न पूछा था कि चाय पियोगे। भोजन की तो बात ही क्या हो सकती थी। हरनामदास के स्वभाव पर मुझे आश्चर्य था। खाने-खिलाते में उसकी आँखों से संतोष, प्रसन्नता और आत्म-गौरव की ज्योति चू रही थी। उसकी आँखें रसीली-सी थीं। जो बात करता था, वह ऊँचे स्वर में। भीतर और बाहर वह एक-सा ही प्रतीत होता था।

हरनामदास के व्यक्तित्व का अनुमान तो मुझे ऋषीकेश में हो गया था। उसकी मुखाकृति से उसके चरित्र का पता मैं कुछ लगा सका; पर न जाने क्यों इस बात पर विश्वास न होता था कि अरब में उसने लाखों रुपये कमाये होंगे। मुझे उस कथन में अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक मालूम होती थी।

× × × ×

सन् १९२८ के जाड़ों के दिन थे। खेत वाली कुटिया से मैं घर—गाँव

---

१ मैं तुझे हाजी कहूँ और तू मुझे काजी कह।

में—कोई चीज लेने गया था। अभी मैं घर पहुँचा ही था कि पीछे से एक नौकर भागता आया कि····साहब आये हैं।····साहब एक अति उच्च पदाधिकारी थे। उनसे मिलने में, उन तक पहुँचने में, न मालूम कौन-कौन से नियमों का पालन करना पड़ता था। वे महानुभाव कैसे आ गये! उन्हीं पैरों मैं लौटा, और कुटिया पर आकर देखा, तो हरनामदास और····साहब हैं।····साहब को पीड़ा से इतना कष्ट था कि उनसे दस कदम पैदल न चला जाता था। डेढ़ मील स्टेशन से हरनामदास उनको अपनी पीठ पर रखकर लाया था। उस दिन से मुझे हरनामदास का वास्तविक रूप दिखाई पड़ा। तब से कई महीने तक हरनामदास का गाँव में रहना हुआ। बीसियों बार उसके साथ मैंने यात्रा की; देहरादून से दिल्ली, दिल्ली से कलकत्ता, शिमला, जयपुर और लखनऊ तक न मालूम कितनी बार वह साथ रहा।

हरनामदास····साहब की क्रीतदास की भाँति सेवा करता था। नौकरी के लिए नहीं। नौकरी तो वह परमात्मा तक की नहीं कर सकता, और न वह यह भविष्य की किसी आशा से करता था। ऐसा करना होता, तो वह अपनी मुनि की रेती की ढाई-तीन सौ रुपया मासिक की आमदनी की दुकान को केवल सेवा की खातिर चौपट न कर आता। उसके आने और सेवा करने के केवल दो कारण थे—पहला तो यह कि····साहब ने मनुष्यता के नाते हरनामदास की कठिन बीमारी में अपने नौकरों से कुछ शुश्रूषा करादी थी। बस, उनके उस गुण पर हरनामदास लट्टू था। दूसरा कारण था····साहब का स्वार्थी और नीच लोगों के कारण कष्ट और विपत्ति के आवर्त में पड़ जाना। हरनामदास की कोमल आत्मा किसी का कष्ट नहीं देख सकती। दूसरों के कष्ट निवारण के लिए उसकी मनुष्यता दुःखित होकर आगे बढ़ती है और अपने आपको होम देती है। इन्हीं दोनों कारणों से प्रेरित होकर हरनामदास····साहब की सेवा करने पर तत्पर हुआ था।

किसी व्यक्ति के गुण-दोष साथ रहने से ही प्रतीत होते हैं, नहीं तो दूर के ढोल सुहावने लगते ही हैं। हरनामदास के चरित्र का न केवल मैंने अध्ययन ही किया, वरन् उसकी एक-एक बात को मैंने मालूम करने की चेष्टा की।

हरनामदास के विषय में मैंने जो प्रश्न किये, उनका उत्तर तो मिला ही, साथ में प्रमाण भी मिला।

× × × ×

अम्बाला जिले में विरामपुर (पो० बेला) नाम का एक गाँव है। हरनामदास का जन्म वहीं हुआ था। उसके दादा को महाराजा रणजीतसिंह से जागीर मिली थी। हरनामदास के पिता विरामपुर की एक विभूति थे। हरनामदास की छोटी आयु में ही वे चल बसे। माँ का विछोह पहले ही हो गया था। इस कारण बालक हरनामदास का लालन-पालन उसके चाचा पर पड़ा। चाचा उसे बेहद प्यार करते थे; पर हरनामदास की चाची का व्यवहार उसके प्रति न तो मातृवत् था, और न चाची का-सा। उसके चाचा इस बात को जानते थे; पर उस स्त्री के आगे किसी की नहीं चलती, जो घर की मालकिन कही जाती है। नौकरशाही के कारनामों को न देखकर कोई घर की नौकरशाही स्वरूपा उस स्त्री को देख ले, जो अपने बच्चों और अपने पति के अतिरिक्त ओरों को गुलाम समझती है। ऐसी स्त्रियों की संकीर्णता और स्वार्थ-परतापर ही सम्मिलित कुटुम्बकी नौका टकराकर चूर-चूर हो जाती है। ऐसी स्त्री सीधी-सादी स्त्रियों को अपनी चाल-बाजी से भी झूठा साबित कर देती है। बस, नौकरशाही के-से सभी ढोंग रचती है। यदि इस व्यवहार से तंग आकर कोई विद्रोह कर दे, तो आँसू बहाकर कहती है—"मरने के बाद मैं क्या छाती पर रख ले जाऊँगी।" छाती पर रखकर तो कोई नहीं ले जाता, पर जमादारी नहीं छोड़ी जाती। हरनामदास को खाने-पीने का कष्ट न था। घर भरपूर था। चाचा का दुलार था; पर चाचा का प्रेम चाची की जमादारी के कारण नहीं के बराबर था। जहाँ चाचा घर से दूर होते, चाची हरनामदास को दुत्कारती और धमकाती। घर की मालकिन की जमादारी बड़ी भयङ्कर होती है। वह मारती भी है और रोने नहीं देती। हरनामदास को घर बूचड़-खाने से अति भयंकर मालूम होता था। कहीं भाग जाने को आत्मा तड़प रही थी।

× × × ×

सन् १८९५ में नौ वर्ष के बालक हरनामदास ने अपने को मातृभूमि

से सैकड़ों मील दूर पाया; पर उसके लिए घर के नरक से बसरा स्वर्ग तुल्य था। उन दिनों पर्शियन आयल कम्पनी का दौर-दौरा था। नासीरिया से मिट्टी का तेल लाने के लिए वहाँ पाइप लगाये जा रहे थे। कम्पनी का दफ्तर अबादान में था। हरनामदास को भी कम्पनी की नौकरी मिल गई, और वेतन था ३५) मासिक। कम्पनी के संचालकों को एक बड़ी दिक्कत बोलचाल की अरबी के न जानने की थी। जो अंगरेज आता था, वह बोलचाल की अरबी सीखने का प्रयत्न करता था। बिना उसके वहाँ के लोगों से वार्तालाप और व्यापार करने में बड़ी कठिनाई थी। कम्पनी के नौकर टूटी-फूटी अरबी से काम चलाते थे। हरनामदास का काम था वहाँ पर पाइपोंकी ढिमरियों को कड़ा करना। उमर थोड़ी थी, और इस कारण वह अरबी लोगों के घरों में बेधड़क चला जाता था, और बच्चों में खेल भी आता था। एक विदेशी अबोध बालक को देखकर अरबी स्त्रियाँ उससे बातें करने लग जातीं, और उसके मातृ-विछोह पर तरस खातीं। हरनामदास इस प्रकार बोलचाल की अरबी जानने लगा। बच्चों में खेलने जाता, और वहाँ की स्त्रियों से बातें करता। बोलचाल की भाषा सीखने के लिए सबसे अच्छा ढङ्ग है भाषा-भाषियों के गार्हस्थ-जीवन से सम्पर्क। बालक होने के कारण हरनामदास को ऐसा अवसर मिला। हँसी और खेल का आनन्द समवयस्क के साथ ही होता है। बच्चे और जवान के खेल में हृदय की कली की सुगन्ध-संचारिणी चटकन नहीं। हरनामदास का खेल-कूद का समय अरबी बच्चों और स्त्रियों में बीतता। फलस्वरूप बोलचाल की अरबी पर उसका असाधारण अधिकार हो गया।

× × × ×

पर्शियन आयल कम्पनी के प्रधान इन्जीनियर अपनी नवविवाहिता वधू के साथ एक दिन टहलने जा रहे थे, और दोनों में इस बात पर बाजी लगी हुई थी कि कौन अरबी अधिक जानता है। किसी शब्द पर वाद-विवाद था। पति का कहना था कि अमुक चीज का अमुक अरबी नाम है, और पत्नी उस चीज का कोई दूसरा ही अरबी नाम बताती थी। हरनामदास अरबी लोगों के घर से निकल रहा था, और उसने दोनों की बातें सुनीं। दोनों को गलत पाकर बाल-स्वभावानुसार हरनामदास ने मुसकरा कर कहा—"आप लोग

दोनों गलत हैं।" यह कहकर उसने उस चीज का अरबी नाम बता दिया। इन्जीनियर और उसकी स्त्री हरनामदास की बातों से बड़े प्रभावान्वित हुए, और एक अरबी को बुलाकर उन्होंने हरनामदास की बात की सत्यता की जाँच की और उस अरबी और हरनामदास में बातें करा दीं। हरनामदास ने फर्राटे के साथ अरबी बोली। साहब की आँखें खुलीं। मेम तो उस पर मुग्ध हो गई, और अगले दिन से हरनामदास की ड्यूटी साहब के बँगले पर लग गई। काम था साहब और मेम को बोलचाल की अरबी सिखाना। मजदूरी के काम से एक प्रकार की अध्यापकी मिली।

इधर हरनामदास तेजी से बालकपन से युवावस्था की ओर कदम बढ़ा रहा था। वहाँ के रहन-सहन से उसको खाने-पीने का शौक लग ही गया था। मयनोशी तो वहाँ की साधारण-सी बात थी। मयनोशी के साथ जवानी की अलमस्ती भी बढ़ रही थी। युवावस्था उसके चेहरे-मुहरे से फूट-फूट कर निकल रही थी। चितवन में वह बालकपन का भोलापन न था। हँसी में वह दैवी माधुर्य न था। और तो और, प्रकृति ने भी युवावस्था का साइन-बोर्ड—दाढ़ी और मूँछ—मुँह पर लगा दिया था। ईरान की वायु ने कहा—"ए जवाँमर्द, नौकरी की जड़ आकाश में है। वह गुलामी का परिष्कृत रूप है। तू आगे बढ़ और व्यापार कर। नौकरी की साँकरी बटिया पर कब तक चलेगा?" युवा हरनामदास ने होठों पर के दोनों मिकनातीसों—मूछों—पर हाथ फेरा और कहा—'एवमस्तु।' अगले ही दिन मेम साहब से उसने कहा—"मेम साहिबा, मैं तो अब दुकान करूँगा। नौकरी न मुझे पसन्द है, और न उसमें मुझे मजा ही आता है।"

मेम हरनामदास पर बहुत प्रसन्न थी, उसने अगले ही दिन दर्जनों मजदूर लगाकर हरनामदास की दुकान तैयार करा दी। बाँस और लकड़ी के तख्तों से कामचलाऊ बहुत बढ़िया दुकान बन गई, और तीसरे दिन से बिक्री होने लगी।

अबादान में पर्शियन आयल कम्पनी की सीमा के निकट पहले एक ही दुकान थी। प्रतिद्वन्द्विता के अभाव के कारण दुकानदार ग्राहकों की परवाह न करता था। कसके दाम लेता था, और तिस पर नखरे दिखाता था। हरनाम-दास की दुकान खुलते ही ग्राहकों की आमद का तूफान उसकी ओर आने लगा,

और अन्धाधुन्ध बिक्री होने लगी। इसके अतिरिक्त कुछ अनुचित व्यापार भी हुआ, और वह था लुका-छिपाकर मंजूरशुदा मिकदार से अधिक में शराब का बिकना। कस्टम वालों की जेबें गरम की गई, और किसी दूसरी चीज के बहाने हरनामदास की दुकान में सैकड़ों दर्जन शराब की बोतलें भी आने लगीं। एक वर्ष में ही अस्सी हजार का मुनाफा हुआ, और वह रकम प्रतिवर्ष बढ़ती ही गई।

पाप में पतन के बीज स्वतः ही हुआ करते हैं, और समय पाकर वे ऐसे फूट निकलते हैं, जैसे जमीन में छिपे घास के बीज बरसात का पानी पड़ते ही उग पड़ते हैं। लोगों को हरनामदास की इस सम्पत्ति-नदी की चढ़ती और बढ़ती धार को देखकर ईर्ष्या हुई। उन्होंने कम्पनी के मैनेजर से शिकायत की कि हरनामदास चोरी से शराब बेचता है। बेचते सब थे, और शिकायत करने वालों ने इस कारण से शिकायत न की थी कि चोरी से शराब बेचने के वे विरोधी थे, वरन् इसलिए कि वे उस प्रकार के व्यापार में अपना भाग चाहते थे। तहकीकात हुई। हरनामदास अपने पुराने मित्र इंजीनियर तक से लड़ बैठा। उसने इस बात को स्वीकार किया कि वह इस प्रकार शराब बेचता है; पर उस प्रकार के व्यापार में गोरों की शै ही नहीं, वरन् हाथ भी था। गौरांग प्रभुओं को यह बात असह्य थी। चोरी से शराब बिके! कोई बेचे, और चाहे कोई पिये; पर कानून और प्रकाश में यह बात न आये कि गोरे लोग भी उस काम में शामिल हैं। हरनामदास की हितैषिणी मेम उस समय विलायत में थी, और उसके पति से, जो अब मैनेजर था, हरनामदास की ठनी हुई थी। मुकदमेबाजी में लगभग सब रुपया फुंक गया। मुकदमा-रूपी कुम्भज उस दो चार लाख की निधि को सूँत गया; पर हरनामदास की बात रह गई।

× × × ×

सन् १९१४ का महायुद्ध-रूपी ज्वालामुखी फूट पड़ा। सम्पूर्ण यूरोप धुआँ-धार हो उठा। टर्की ने इंग्लैंड के विरुद्ध मोरचा लिया, और जर्मन सैनिक जनरलों ने अंग्रेजों को चारों ओर परेशान कर दिया। जर्मन और तुर्कों के आक्रमणों को रोकने के लिए जनरल टाउनशैंड बगदाद की ओर भेजे गये। जंगी जहाज 'स्पैकिल' बगदाद की खाड़ी में तोपों से सुसज्जित खड़ा था; पर

टाउनशैंड को ऐसे आदमियों की जरूरत थी, जो अरबी खूब बोल लेते हों, और सैनिकों को खाद्य-सामग्री भी दे सकें। चिन्तामग्न जनरल टाउनशैंड गुप्त रूप से पर्शियन आयल कम्पनी के दफ्तर में आये, और ऐसे आदमी की खोज में लगे। मैनेजर तक को हरनामदास की ही सिफारिश करनी पड़ी। यद्यपि वह हरनामदास से खार खाये बैठा था; पर मरता क्या न करता। हरनामदास को छोड़कर वहाँ पर कोई दूसरा ऐसा आदमी न था, जो बोलचाल की अरबी में दक्ष हो, और जो व्यापार को जानते हुए अपनी जान हथेली पर लिए फिरता रहे। जनरल टाउनशैंड की और हरनामदास की बातचीत हुई, और उसी दिन से दोनों की दोस्ती गँठ गई।

× × × ×

तूफान से जैसे मरुभूमि में टीले कहीं के कहीं जा बनते हैं, उसी प्रकार युद्ध के तूफान काल में सम्पत्ति की ढेरियाँ लग गईं। ऐरे-गैरों तक की बन आई। पाट, फाटका, रुई और युद्ध की सामग्री बेचने वालों की पाँचों घी में थीं। लाखों आदमी मर रहे थे। घायलों के चीत्कार और तोपों की गर्जना से सब दिशाएँ काँप रही थीं। विधवाओं की आहों से सहृदयों के टुकड़े हुए जाते थे; पर व्यापारी बन रहे थे। जिनको युद्ध से पहले बातचीत करने का शऊर तक न था, वे ठेका या व्यापार के कारण नवाब बन रहे थे। ऐसे काल में हरनामदास की कौड़ी चित्त पड़ी, तो क्या आश्चर्य। वह तो रणक्षेत्र में था, जहाँ बीसियों बार बम उसके पास फटे, और जहाँ गोलियों की आकस्मिक वृष्टि से उसके साथियों के हाथ के ग्रास हाथ में रह जाते थे। हरनामदास ने यदि एक-एक दिन में तीस-तीस हजार कमाया, तो क्या आश्चर्य।

बगदाद में हरनामदास की धाक थी। जनरल टाउनशैंड के वह खास दोस्तों में था। उनके कैम्प में वह किसी भी समय जा सकता था। सिपाहियों के लिए वह हलवाई की दुकान किये था, और उसकी कई दुकानें थीं, पर बगदाद में ही उसकी खास गद्दी थी।

वाई० एम० सी० ए० के साथ भी हरनामदास ने काम किया था, और इतना अच्छा काम किया था कि स्वर्गीय के० टी० पाल ने उसके विषय में

समाचार-पत्रों में लिखा। तीन-चार वर्ष की लड़ाई में हरनामदास ने पचास-साठ लाख रुपया कमाया।

× × × ×

तोपें गरजती और गोले उगला करतीं। युद्ध की भयंकरता उग्र हो रही थी; पर संसार के सभी काम हो रहे थे। हरनामदास का भोग-विलास भी जारी था। सांयकाल को जब अवकाश मिलता, तब दोस्तों की बैठक जमती। ईरानी, इटालियन और फ्रांसीसी शराब—बढ़िया-से-बढ़िया शराब—के दौर रहते। उधर महफिल जमती और तबला ठनकता। बगदाद की बढ़िया-से-बढ़िया नर्तकी का नृत्य होता, और महफिल में एक-एक हजार का नोट फेंक दिया जाता। नर्तकी उसको आँख के पलकों से उठा लेती।

रात को सोते समय दर्जनों नौकर उसकी टहल में लग जाते। कोई टाँगें दबाता, तो कोई उँगलियाँ चटकाता, और बगल में पचास रुपया मासिक वेतन और खुराक पर कहानी कहने के लिए रखा हुआ पठान कहानी कहने लगता। गम गलत तो हरनामदास को करना न था। उसके भोग-विलास की एक दिशा थी। सिक्ख-धर्म का उस पर प्रभाव था। उसने उसकी रक्षा की। वहाँ के समाज ने सच्चरित्रता की जो सीमा बाँध दी है, उसका उल्लंघन उसने नहीं किया। उसने वहाँ सत्रह विवाह किये थे, अरबी स्त्रियों से, वहाँ के कानून के अनुसार निकाह नहीं, मुताह किये थे। कुछ दिनों के लिए एक से मुताह किया, और नियत समय के बाद उसको तलाक दे दिया।

इस आपत्तिजनक चित्र के पहलू का एक दूसरा रूप भी था। हरनामदास ने युद्ध-काल में बिक्री की आमदनी में आने वाली दुअन्नियों और चौअन्नियों को गद्दी पर नहीं रखा। इन्हें वह गरीबों और जरूरत वालों में बाँट दिया करता था। स्मरण रहे, दुअन्नी और चौअन्नी से प्रति दिन सैकड़ों की आमदनी होती थी। हलवाई की दुकान पर दुअन्नी और चौअन्नियों का आना—अधिक संख्या में आना—स्वाभाविक ही था। यदि एक रेजीमेंट के लिये हजारों की खाद्य सामग्री जाती थी, तो लड़ाई से लौटे हुए सिपाही—फायरिंग लाइन से दूर—खुद मिठाई लेकर खाते थे। गरीब आदमियों की कन्याओं के विवाह का खर्च

हरनामदास अपने ऊपर लेता था। जिसका कहीं ठिकाना न था; जिसको भाग्य ने ठुकरा दिया था, उसका आश्रय हरनामदास था। कष्ट-पीड़ितों की रक्षा के लिए वह बड़े-से-बड़े गोरे को कुछ न समझता था। सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की हैसियत के अनेक गोरों को उसने पिटवाया था। जब जनरल टाउनशैंड के साथ उसकी दोस्ती थी और जब हरनामदास उनकी नाक का बाल हो रहा था, तब किसी टुटपुँजिये गोरे का क्या ताव, जो हरनामदास के विरुद्ध कुछ कर सके! युद्ध-काल में वर्ण-भेद पर ग्रहण लग गया था।

× × × ×

कुतका घेरा पड़ा, और जनरल टाउनशैंड तथा उनकी सेना फन्दे में फँस गई थी। हरनामदास ने हवाई जहाजों से खाद्य-सामग्री पहुँचाई, और यदि पाँच मिनट की देर हो जाती, तो हरनामदास को टाउनशैंड के साथ आत्म-समर्पण करना पड़ता।

× × × ×

दिन के बाद रात और रात के उपरान्त दिन का होना प्रकृति का नियम हैं। युद्ध के उपरान्त शान्ति हुई। हरनामदास ने रुपया भी कमाया। यश भी कमाया। मेडल्स (तमगा) और धन्यवादों की तो गिनती ही क्या। उसको पंजाब में कुछ जमीन भी पुरस्कार-स्वरूप मिलने की आज्ञा हुई; पर बगदाद में अब जनरल टाउनशैंड और मौडका दौर दौरा न था। ब्रिटिश साम्राज्य पर से शनिश्चर का ग्रह हट गया था। वर्ण-भेद का ग्रहण भी समाप्त हो चुका था।

गोरे और काले के भेद का भूत अधिकारी गोरों के सिर पर चढ़कर बोलने लगा। एक दिन हरनामदास की गद्दी पर पुलिस ने छापा मारा, और उसको यह हुक्म दिया गया कि तीन घण्टे के अन्दर बगदाद छोड़कर हिन्दुस्तान चले जाओ। हरनामदास अपने नशे में चूर था। उसने पुलिस की धमकी को कोरा मजाक समझा; पर वह मजाक न था। हरनामदास के कई आदमियों को पुलिस ने पहले ही से मिला रखा था। उन्होंने पुलिस के षड्यन्त्र में सहायता दी। ठीक समय पर हरनामदास को जहाज पर पुलिस के घेरे में लाया

गया। गद्दी पर उस समय अस्सी हजार रुपये थे। एक मुसलमान मुनीम को साथ लेकर हरनामदास, अस्सी हजार रुपयों के साथ, हिन्दुस्तान को रवाना हो गया। खयाल था युद्ध-सेवा और मेडलों के जोर से पुलिस के षड्यन्त्र को फोड़ दिया जायगा; पर भाग्य का तख्ता पलट चुका था। भारतवर्ष में पहुँचते ही मुसलमान मुनीम सत्तर हजार रुपया लेकर भाग गया! विपत्ति का पहाड़ टूटकर सीधा सिर पर आ रहा था; पर हरनामदास को कोई चिन्ता न थी। शेष दस हजार रुपया तो था ही, और अरब की लाखों की सम्पत्ति उसी की तो थी, ऐसा उसका खयाल था। लाखों रुपया उसने भले कामों में व्यय किये थे। तेरह लाख तो उसने मुताह और रँगरेलियों में ही उड़ा दिये थे, और लाखों रुपया उसके पास था। छँ-सात दुकानें थीं, और भी सम्पत्ति थी; ऐसी दशा में मुनीन ने नमकहरामी की तो क्या बात है। 'हंडिया फूटी पर कुत्ते की जात मालूम हुई' की-सी भावना से हरनामदास ने पहले गंगा-स्नान की ठानी। विदेश में चौबीस वर्ष रहने के बाद वह लौटा था। गंगाजी के प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक था। फर्स्ट क्लास का टिकट कटाकर वह हरिद्वार के लिए रवाना हो गया।

हरिद्वार के समीप लुक्सर जंकशन पर हरनामदास ने खिड़की से बाहर देखा, तो आर्तनाद में एक साधु कह रहा था—"बाबा, एक पैसा दे! भगवान् तेरा भला करेगा। बाबा, कल से कुछ नहीं खाया।" ऐसी घटनाओं से हरनामदास का कोमल हृदय सर्वदा पिघलता रहा है। जब साधु हरनामदास के डिब्बे के पास होकर निकला, तब वही आवाज लगाई। हरनामदास ने एक खोमचेवाले को बुलाकर कहा—"इस साधु को भरपेट पूरियाँ और मिठाई खिला दो। दाम मैं दूँगा।" साधु से बहुत न खाया गया। उस प्रकार कहकर माँगने की उसकी तो बान थी। साधु ने पानी पीकर हरनामदास को आशीर्वाद दिया—"बाबा, तेरे बेटे अमर हों।" बेटों की बात सुनकर हरनामदास ने मुसकरा कर कहा—"हरिद्वार तो गंगा-स्नान करने नहीं जायगा?"

"हाँ, बाबा चलेंगे"—कहकर साधु तैयार हो गया।

× × × ×

हरिद्वार में जाकर एक धर्मशाला मे डेरा डाला। धर्मशाला के प्रबन्धक

ने साधु को धर्मशाला में ठहरने की आज्ञा न दी, पर दस रुपये के एक नोट ने प्रबन्धक को मोम की भाँति पिघला दिया। रात हुई। हरनामदास ने शराब के कई पैग चढ़ाये, और सुबह आँख खुली। साधु नदारद था, वह हरनामदास के बचे-खुचे दस हजार रुपयों के नोटों को लेकर चम्पत हो गया था! महा-सागर के बीच, जहाँ से समुद्र तट सैकड़ों मील हो, हरनामदास का जहाज डूब गया। पास-पल्ले कुछ नहीं था। कलाई में बँधी साढ़े सात सौ की एक घड़ी थी। सोचा, उसी को बेचकर घर जाया जाय। घड़ी जो बेचनी चाही, तो चालीस रुपये से अधिक किसी ने दाम न लगाया। हरनामदास के मन को ठेस लगी। सबके सामने उसने घड़ी को पत्थर पर रखा, और धड़ाम से उसे जूते की ऐड़ी से चूर-चूर कर दिया। लोगों ने उसे पागल समझा। कुछ आदमियों की भीड़ उसके चारों ओर एकत्र हो गई। हरनामदास के चेहरे पर गम्भीरता और उदासीनता का दृश्य था। लोगों की भीड़ को चीरता हुआ बोला—"जब मेरे इतने रुपये काम न आये; जब साढ़े सात सौ की घड़ी का मूल्य चालीस रुपया ही लगे, तब फिर वह घड़ी ही मेरी क्या सहायता कर सकती है।"

× × × ×

काली कमलीवालों के यहाँ एक विचित्र आकृति का व्यक्ति रसोइया का काम करता था। हाल ही में आया था। वहाँ की भीतरी हालत देखकर और दाढ़ी से दोषों को छिपाने वालों की वास्तविकता से चकित होकर उसे बड़ा दुःख हुआ। नौकरी उससे कभी हो नहीं सकती थी। बदकलामी सहना उसके खून में न था। एक अधिकारी ने उससे कुछ कह दिया, और उस रसोइया ने उसे ठोंक-पीट दिया, और नौकरी छोड़कर वह चला गया। पीटने वाला रसोइया हरनामदास था।

हरनामदास ने बहुत हाथ-पैर पीटे। लिखा-पढ़ी बहुत की। कागजात, मेडल्स और टाउनशैंड-मैत्री और युद्ध-सेवा की तोप भी चलाई, पर कुछ न हुआ। न तो उसको बगदाद जाने का पासपोर्ट मिला, और न सरकार—शायद ईराक-सरकार—के यहाँ से कुछ हुआ। जवाब आया, तो यह आया कि

उस नाम का कोई आदमी वहाँ न था, और न उसका वहाँ कुछ रुपया है। हरनामदास का कहना है कि चलते समय नशे में उसके मुख्तार ने, पुलिस की शै से, न मालूम किस कागज पर हस्ताक्षर करा लिये थे।

× × × ×

जनरल टाउनशैंड और जनरल मौडके मित्र, कुत को हवाई जहाज से सहायता देने वाले और स्वर्गीय के० टी० पालके परिचित हरनामदास को इस प्रकार के व्यवहार और अँग्रेज अधिकारियों की क्षणिक स्मरण-शक्ति पर इतनी ग्लानि हुई कि उसने अपने कागजात, सर्टीफिकेट, पत्र और मेडल्स गंगाजी के गर्भ में अर्पित कर दिये। वह अपने पुराने वैभव को भुलाने लगा, और अति साधारण व्यक्ति की भाँति उसने अपना जीवन-क्रम बना लिया।

किसी को उसकी पूर्व दशा, इतने रुपये और टाउनशैंड-दोस्ती का सहज में विश्वास नहीं हो सकता। स्वयं मुझे नहीं हुआ था; पर जब मैंने कागजात देखे और सर्टीफिकेट तथा पत्रों का अवलोकन किया, तब अपने भ्रम पर बड़ा क्षोभ हुआ। संसार में कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिनको हम अपने संकीर्ण अनुभव की कसौटी पर कसते हैं, और हर एक को अपने मानसिक क्षितिज के भीतर ही समझते हैं।

× × × ×

हरनामदास से मैं सन् १९२८ से भलीभाँति परिचित हूँ। उसके पास रुपया नहीं है; पर दिल वही है, वही उदारता है। यदि उसके पास चार-पाँच रुपये हुए और उसने किसी को कष्ट में देखा, तो उसकी सहायता करने में वह कभी नहीं चूकता। सेवा करना उसका खास गुण है। साधारण-से-साधारण आदमी से वह सैकिण्डों में दोस्ती कर लेता है। किसी से कुछ माँगना उसके लिये हराम है।

मैं उसके दोषों को भी जानता था। शराब, सिगरेट, अफीम, गाँजा और भाँग—सबकी उसे आदत थी। शराब तो बगदादी बीमारी थी। सिगरेट साधारण-सी बात हुई। अफीम दमा के रोग को दबाने के लिए खाई जाती थी।

गाँजा और भांग ऋषिकेश में साधुओं ने पिलाना प्रारम्भ करा दिया था। मैंने एक दिन दुखी होकर उससे कहा—"हरनामदास, ये नशे तुम्हारे नाम पर बट्टा लगाते हैं। तुम्हारे रूप के अनुरूप नहीं हैं। इनका छोड़ना तुम्हारे लिए असम्भव जरूर है; पर क्या तुम शराब और गाँजा नहीं छोड़ सकते?" हरनामदास ने कोई उत्तर नहीं दिया। देश में शराबखोरी और अन्य मादक द्रव्यों के विरुद्ध आन्दोलन भी था। सांयकाल को हरनामदास ने सिगरेट, गाँजा और अफीम की पुड़ियों को फेंक दिया, और सब नशों से तोबा कर ली। एकदम छोड़ने से उसे काफी कष्ट हुआ। मरणासन्न हो गया; पर व्रत से वह टला नहीं, और आज तक वह उस पर डटा है। किसी प्रकार उसके पास फिर से रुपया भी आ जाय, तो भी, वह मदिरापान या कोई और नशा न करेगा—ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

× × × ×

जनवरी सन् १६३१ में मैं देवघर से कलकत्ते आया तो तुलापट्टी में हरनामदास को रोग-ग्रसित पाया। कलकत्ते की तुलापट्टी एक तो वैसे ही भट्टी-सी बनी रहती है, जिस पर हरनामदास ने वहाँ छोटी-सी दूध की एक दुकान खोली थी। बुखार जो आया, तो तीन दिन तक चारपाई पर पड़ा रहा। कोई पानी देने वाला तक न था। हम लोग (मेरे बड़े भाई और मैं) जो आये, तो हरनाम दास की तबियत हरी हो गई। उसकी सूरत-शक्ल ऐसी हो गई थी, मानो कब्रिस्तान से उखाड़ कर किसी को चारपाई पर रख दिया हो। दवा-दारू की और सिंघीबागान और चित्तरंजन एवन्यू के तिराहे पर उसको दुकान करादी। वहाँ भी वह गरीबों को न भूलता था। दो-एक कंगाल को राजेन्द्र मल्लिक के यहाँ चाहे भोजन न मिले; पर याचना करने से हरनामदास के यहाँ कुछ-न-कुछ जरूर मिल जाता था।

हरनामदास को हम लोगों ने समझाया—"तुम किस के लिए दुकान करते हो? बाल-बच्चों की तुम्हें चिन्ता नहीं। अपनी जान क्यों खटाई में डालते हो? कलकत्ता बगदाद नहीं है। यहाँ पर वहाँ की-सी ईमानदारी नहीं। दुकान छोड़ मौज करो। कलकत्ते की दुर्गन्धपूर्ण वायु का क्यों सेवन करते हो।"

हरनामदास की समझ में यह बात आ गई, और उसने ५ मई सन् १९३२ को कलकत्ता छोड़ दिया, और आजकल वह गाँव में कुटिया पर है। बिना काम के हरनामदास से रहा नहीं जाता, सो सुबह उठकर, वह खुरपी लेकर पपीतों और नीबू के पेड़ों को नराया करते हैं और मट्ठा और रोटी पर भगवान का नाम लेकर गुजारा करते हैं। वे न तो मेरे नौकर हैं, और न आश्रित, घर के एक आदमी की तरह रहते हैं। बगदादी रईस को नौकर रखने की अपनी हैसियत नहीं। हरनामदास रईस ही हैं। पैसा पास नहीं है; पर तबीयत वैसी ही शाहाना है।

हाँ, ईरान में हरनामदास का एक मकान भी है, और उसका किराया भी अब तक उसके चचेरे भाई के नाम आता है। उसके गाँव में चचेरे भाई हैं। खूब सम्पन्न हैं। दो-चार बार बुलाने भी आये हैं; पर घर की ओर हरनामदास के पैर नहीं पड़ते। घर से दुःखी होकर गया था, इसलिए, घर वालों को केवल सत्तर हजार रुपये दिये थे। उसका विचार है कि अब फकीराना हालत में घर की ओर न जाया जाय।

× × × ×

हरनामदास की जीवन कथा बड़ी उपदेशप्रद है। धन-सम्पत्ति के गर्व से मदान्ध लोगों को उससे शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य के भाग्य पलटने में कोई देर नहीं लगती। धन और शान का घमण्ड वृथा है। अकबर और शाहजहाँ के अनेक वंशज टुकड़े-टुकड़े के लिए तरस रहे हैं।

हरनामदास की कथा स्मरण कर हृदय से एक ठण्डी साँस निकलती है, और कानों में यह गूँज होने लगती है :—

"जिनके तबेलों बीच कई दिन की बात है,
हरगिज न था इराकियो अरबी का बाँ शुमार।
अब देखता हूँ मैं कि जमाने के हाथ से,
मोची से कफ़्शपाको गठाते हैं वह उधार।"

: ३ :

नयना : सितमगर

तंग गलियों में तेली के बैल की भाँति वहीं-के-वहीं जीवन बिताने वाले व्यक्ति प्रशस्त मैदान में विचरने वालों के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकते। कूप-मण्डूक क्या जाने कि कुएँ के क्षेत्र के अतिरिक्त विश्व में कुछ और भी स्थान है। विज्ञान तथा गणित को ज्ञान का अथ और इति समझने वाले किताबी कीड़े—आसुरी माया पर रीझने वाले—शुष्क पांडित्य की प्रतिमाएँ क्या जानें कि विज्ञान और गणित की संकरी गलियों के परे भी कोई चीज हो सकती हैं, जिसका विश्लेषण रसायनशालाओं में नहीं हो सकता। रसायनशालाओं और कारखानों में बहुत-सी अत्यावश्यक और अनावश्यक वस्तुएँ बनती हैं; पर सुख और दुख, निर्वाण और अद्वैतवाद और अन्य ऐसी ही समस्याएं विज्ञान की कसौटी से परे की बातें हैं।

भाग्य और अवसर की वैज्ञानिक परिभाषा क्या हुई ? गणित और विज्ञान के मापदण्ड से भाग्य और अवसर को नहीं नापा जा सकता, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार नदी के पानी को गजों से नहीं नापा जा सकता। हाँ, दार्शनिक कह सकता है कि कर्मों के फल को—चाहे वह शुभ हो चाहे अशुभ—भाग्य कहते हैं और कर्म संचित भी होते हैं।

भाग्य से तो हम भुगत सकते हैं। कई प्रकार से उसका विश्लेषण कर सकते हैं; पर अवसर, मौका, चांस के लिए कोई विशेष उत्तर नहीं है। उत्तर होगा; पर, विश्व में अभी कितनी ही बातें हैं, जिनका संतोषजनक उत्तर नहीं, और उत्तर होने पर भी प्रकृति के निकट रहने वाले, प्रकृति की कृपा पर जीवन-यापन करने वाले लोग जानते हैं कि अवसर जीवन में वह सोपान है, जिसके द्वारा लोग उत्थान-पतन, अमीरी-गरीबी और मनचीती बात तक अनायास ही पहुँच जाते हैं। कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज व्यक्ति को परेशान होकर नदी में

जीवन से हाथ धोने के लिए जाते समय मार्ग में रुपयों की थैली मिल जाती है, और वह प्रसन्न होकर घर लौट आता है। इसमें किसी कारण और फल की शृंखला होगी; पर साधारण आदमी उसका खयाल नहीं करता, वह तो उसे अवसर ही कहेगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि बीसों बार अथक परिश्रम करने पर भी कोई वस्तु-विशेष नहीं मिलती और जब मिलती है, तब अनायास ही बिना किसी परिश्रम के। इसका तात्पर्य यह नहीं कि परिश्रम न किया जाय और भाग्य के भरोसे हाथ-पर-हाथ रखकर ही बैठा रहा जाय। परिश्रम और लगन तो आत्मा के बहुमूल्य आभूषण और जीवन के आधार हैं। हाँ, अवसर भी कोई चीज है जरूर।

सन् १९३३ का १९ मार्च। छुट्टी का दिन था। भोजन करके पड़ा सो रहा था। मार्च—फागुन—और सितम्बर—कुआर—के महीने उत्तरी भारत में दिनमान और तापमान को बराबर तोल देते हैं। मार्च में तो शीत और ग्रीष्म की रस्साकशी बराबर-सी रहती है पर सरदी का बुढ़ापा शीत के प्रेमियों के लिए ढलती जवानी के समान जाता मालूम होता है। फागुन में सरदी का सुहाग लुट जाता है। नवजात ग्रीष्म प्रकृति से अठखेलियाँ खेलती है। पौधों और वृक्षों को विहँस-विहँसकर चैलेंज करती है, कि बच्चू सभल जाओ अभी से। नवीन जिरहवख्तर पहन लो, नहीं तो मेरी 'ज्वानी की मरोरा'—लू का प्रकोप—तुम्हें ले बैठेगा। फागुन के प्रकृतिफाग पर दिमाग दो कदम और बढ़ने वाला ही था कि सामने कोठी के पार धूल उड़-उड़कर आसमान से बातें करती दिखाई दी। हवा तो थी नहीं। बस बैलगाड़ियों के कारण—पहियों और बैलों के खुरों से रौंदे जाने पर—वह समुद्र की तरंगों के समान आकाश से टक्करें लेती थी। उधर की ओर कान लगाये तो बैलों के गलगल भी सुनाई पड़े। बात-की-बात में गर्दोंगुबार का बवंडर उठाते हुए राजकुमार कटियारी कुँवर उदयप्रतापसिंह कोठी के सामने आ रुके और सुअर के शिकार के लिए चलने को कहा।

मैं तुरन्त तैयार हुआ और अपनी प्रगल्भ-वचना प्रेयसी रेमिंटन को लेकर चल पड़ा। साथ में भीड़-भक्कड़ का तो ठिकाना ही न था। ताजी कुत्ते छह-सात, कुछ लेंडी कुत्ते, भाले वाले कई-एक, तीन-चार सवार, कुछ चपरकनाती, कई

राइफलें, बारह नम्बर की बन्दूकें और ठस्सेदार बन्दूकों के साथ हमारा हत्यारा दल बड़े गाँव के जंगल की ओर बढ़ा। बड़ा गाँव रियासत कटियारी का गाँव है। उसी के करीब जंगल की एक छोटी-सी टुकड़ी है जिसमें सुअर शरण लेते हैं। हम लोगों का दल बीस मिनट में ही जंगल के पास पहुँच गया। एक मील की ही दूरी तो थी मेरे रहने के स्थान से।

जोर-बटोर हाँका करने वाले लोगों को इकट्ठा किया गया। हाँका करने वाले लोग कुछ तो स्नेहवश आये और कुछ हुकूमत में। हुकूमत और जमींदारी का चोली-दामन का साथ है। काश्तकारों को मालिक की खातिर आना ही पड़ा। जंगल की नाकेबंदी कर ली गयी। तीन-चार स्थान ही थे जिधर से सुअर निकल सकते थे। चारों स्थानों पर मोर्चेबन्दी हो गई। राजकुमार कटियारी उस स्थान पर डटे थे, जहाँ से सुअरों के निकलने की अत्यधिक संभावना थी। दूसरी जगह पर एक दूसरा शिकारी था जिसका जन्म सुअरों से हाथापाई और धरपकड़ करते ही बीता है, जिसने हजारों सुअरों को मारा है। तीसरे स्थान पर एक बौड़म शिकारी थे, जो शिकार-कला को खाक भी नहीं समझते थे। चौथी और सबसे रद्दी जगह पर मैं था। वहाँ से सुअर के निकलने की बहुत कम संभावना थी। मैं भी मारने का कुछ विशेष इच्छुक न था, क्योंकि साथ में हाँडी गरम करने वाले अधिक थे जो इस बात के कायल थे कि बच्चा बूढ़ा या जवान जो मिले, मारने से उन्हें काम। और मैं फैर करता बड़ी वीरों-काँपों वाले सुअर पर ही। मुझे हाँडी का तनिक भी ख्याल न था। मैं तो किसी अनुभवी, पिचैत और अकड़फूँ सुअर पर ही वार करने का इरादा रखता था।

कुत्तों के लगाने और शिकारियों के मोर्चे पर खड़े होने पर हाँका करने वालों को हाँके का सिगनल दिया गया। लेंडी कुत्तों के साथ आदमियों का झगड़ना प्रारम्भ हुआ। हू-हो और लाठियों को झाड़ियों में मारने का शब्द धम-धम और लेंडी कुत्तों के इधर-उधर भागने की ध्वनि से जंगल की टुकड़ी की रग-रग ढीली होने लगी। खरगोश, लोमड़ी और गीदड़ घबराये हुए निकले और थोड़ी देर में ही एक बड़ा सुअर मस्त चाल से, कनखियों से देखता हुआ, मुझसे लगभग चालीस गज की दूरी पर निकला। देखते ही मेरी रेमिंगटन कंधे से जा

चिपकी; पर ठीक सामने बौड़मदास शिकारी थे—शायद अपना स्थान छोड़ कर उधर आ गये थे। राइफल नीचे करके मैं चुप हो गया। राइफल की नली से गोली न निकल कर मेरे मुँह से निकल पड़ा—

"भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम,
अब तो नफरत हो गई, वह बेकरार आने को हैं।"

मेरी शिकार की इच्छा नहीं थी। मेरे ही सामने रही जगह से—न निकलने की जगह से—सुअर निकल पड़ा; जो खाने के लिये लालायित थे उनके सामने से वह निकला ही नहीं। शिकारी और शिकारी कुत्तों की आँखों में धूल झोंककर, सबको चकमा देकर, सुअर तीन-तेरह हो गया।

× × × ×

खीजा शिकारी और पथभ्रष्ट संन्यासी भयानक होते हैं। सुअर हाथ से निकल जाने के कारण हमारा दल कम खीजा हुआ न था; पर मुझे तनिक भी खीज न थी वरन् सुअर के भाग्य पर आश्चर्य हो रहा था। राइफलों, बन्दूकों, बल्लमों और कुत्तों को झाँसा देकर वह साफ बच गया; पर उस जंगल में उसे कभी फँसना जरूर था। सुअर से हताश होकर हमारा दल दो टुकड़ियों में विभक्त हो गया। हाँडी को गरम करने के इच्छुक लोग तीतर-हिरन और सुअरों की तलाश में झाड़ियों के झुरमुटों की ओर चले। राजकुमार कटियारी और मैं रामगंगा के किनारे की ओर बढ़े। कहते हैं, भागते भूत की लँगोटी ही भली होती है, और हम लोग चाहते थे कि बड़ा सुअर न सही, कोई मगर ही मिल जाय। भकभकादेवी रेमिंगटन का क्रोधानल किसी जलचर पर ही प्रकट हो जाय। न हो बोतल-भरी गुल्लाला, एक पैमाना ही सही। कुछ अमल हो जाय। बस, इसी खयाल से बैलगाड़ियों पर लदे, मार्ग की धूल फाँकते और कुछ झक-सी मारते हम लोग खसौरा गाँव की ओर बढ़े।

फसल कट रही थी। चारों ओर किसान गेहूँ, चना और जौ की फसल काट रहे थे। उमर पूरी होने यानी पक जाने पर पौधे पीले होकर सूख रहे थे। जमीन से खुराक खींचने की ताकत उनमें थी ही नहीं। हवा के

झोंकों से हिलते पौधे ऐसे प्रतीत होते मानों धरती माता के बिखरे बाल लहरा रहे हों। हम लोग कुछ आगे बढ़े, और दूरबीन से नदी के किनारे का निरीक्षण किया। चार फर्लांग की दूरी पर दो मगर किनारे की रेती पर पड़े दिखाई दिये। बड़े आकार के थे। देखकर तबीयत खुश हो गई और भागते भूत की लँगोटी—दो मगर—देखकर एक सवार आगे दौड़ाया कि मगरों के करीब के खेतों के किसान नदी की ओर न जायँ, नहीं तो मगर नदी में चले जायँगे।

सवारियों को छोड़कर हम लोगों ने हथियार संभाले और आगे बढ़े। इतने ही में सवार ने आकर कहा कि एक घड़ियाल और एक गोह है।

मगर के दो भेद हैं। एक तो चपटे—छिपकली के—मुँहवाला और दूसरा लम्बी थूथनवाला। लंबी थूथनवाले में थूथन के सिरे पर ऊपर तूमड़ी वाले को घड़ियाल कहते हैं। मादा को कहीं गोह, कहीं तुमरिया, कहीं मगर और कहीं कुछ और। छिपकली के-से मुँहवाले को नाका कहते हैं। नाका स्वभाव से ही मनुष्य-भक्षी होता है। मनुष्य, कुत्ता, बछिया, बकरी और अन्य जीवों को पकड़कर खा जाता है पर लंबी थूथनवाले मगर—घड़ियाल को छोड़कर—प्राय: मछली खाते हैं। पर घड़ियाल तो मौत का फरिश्ता है। जहाँपर घड़ियाल होगा वहाँ मनुष्य नदी में घुसने से घबराता है। कई अंग्रेजी पुस्तकों में हमने पढ़ा है कि लंबी थूथनवाले मगरों से भय की आशंका नहीं। पर घड़ियाल भी तो लंबी थूथनवाला होता है, और घड़ियाल की खूंख्वारी तीव्रगति और ताकत के सम्मुख नाका हेच है। भारतवर्ष में २० फुट के नाके होते ही नहीं; हाँ, घड़ियाल अब भी १८-२० फुट के कहीं-कहीं मिल जाते हैं।

मैंने नाके और लंबी थूथनवाले मगर बहुत काफी मारे थे। पर घड़ियाल एक भी न मारा था; इसलिए घड़ियाल मारने की मेरी प्रबल इच्छा थी।

समीप जाकर—करीब दो सौ गज से—देखा तो जी फड़क गया। तूमड़ीदार थूथन को ऊपर किये घड़ियाल एक बड़ी मादा मगर—गोह—के पास प्रेमातुर पड़ा था। दूरबीन से देखा तो एक बड़ी करार-सी पड़ी मालूम हुई। भस-रस में लीन तरुण घड़ियाल, युवती गोह के पास, बड़ा शानदार प्रतीत होता था। किसी दूसरे छोटे-पूरे घड़ियाल की क्या ताव, जो उसकी

प्रेयसी के निकट भी आ सके, पूँछ और थूथन के प्रहार से वह उसको बेहाल कर देता और अपनी बात के लिए मरने-मारने पर उतारू हो जाता। मालूम होता था कि पृथ्वी के गर्भ से दो दैत्य निकलकर चैन की बंशी बजा रहे हैं।

राइफल पर डेढ़ सौ गज का निशाना लेकर जो देखा तो सूर्य की किरणें नाल पर पड़कर चकाचौंध पैदा कर रही थीं, मानों घड़ियाल की जवानी का प्रखर प्रतिबिम्ब उतर आया हो, अथवा सुख से पड़े दो प्रेमियों पर वार करने से राइफल झेंपती हो। इस आशंका से कि कहीं गोली ओछी पड़ी तो सब गुड़ गोबर हो जायगा, मन मसोसकर रह गया, और यह तय किया कि दिउसीपुर के घाट को पार करके घड़ियाल पर वार किया जाय। वैसे घड़ियाल नदी के हमारी ओर-वाले किनारे की रेती पर ही पड़ा था; पर दो कठिनाइयाँ थी। हमारे पास से घड़ियाल तक समतल-सी भूमि थी और अधिक करीब जाने में घड़ियाल के पानी में सरक जाने की आशंका थी। दूसरे, सूर्य सामने था, इसलिए अचूक निशाना नहीं बनता था। मगर पर जबतक गर्दन, दिमाग या अगली टाँगों की बगल में गर्दन की ओर निशाना न लगे तबतक वह वहीं-का-वहीं नहीं रुकता। फिर घड़ियाल-जैसी चीज तो ठीक स्थान पर ही गोली पड़ने से ठौर रहती है।

इसलिए हम लोगों ने निश्चय किया कि करीब से ही मगर पर गोली दागी जाय। यदि बिना फैर के मगर नदी में चला गया तो संभवतः फिर भी हाथ चढ़ जाय और यदि फैर से बिदक जाय या घायल हो जाय तो फिर हाथ आना कठिन हो जायगा। पर कुछ देर तक हम लोगों ने उसकी धज देखने की ठानी। साढ़े तीन बज रहे थे, आठ-दस मिनट बाद वहाँ से चलकर एक घंटे में घाट से होकर घड़ियाल के करीब नदी के दूसरी ओर पहुँच जायँगे। दूसरी ओर खड़ा किनारा था। वहाँ से घड़ियाल तक की दूरी कोई पचास गज होगी।

घड़ियाल की धज देखने में कल्पना-शक्ति ने बड़ी ऊँची उड़ानें भरीं। न मालूम कितनी उपमाएँ सूझीं। घड़ियाल और गोह मानो पाताल-लोक के से प्राणी थे जो अपनी निर्द्वन्द्विता का प्रचार कर रहे थे। अराजकता के

पुजारी, पाप-पुण्य के बंधन से मुक्त, प्रणय के धागे से बँधे वे दोनों कितने बलशाली और डरावने प्रतीत होते थे। फागुन का महीना मगरों का प्रणय-मास होता है। मगर भी प्रणय का फाग खेलते हैं। नायक और नायिका उनमें भी होते हैं। हाँ, उनमें कवि नहीं होते पर उनके जीवन में कविता जरूर होती है; चाहे वे उसे महसूस न करें, उनके महसूस करने की बात भी नहीं। जड़ मनुष्य थोड़े ही जानता है कि उसमें ब्रह्म रम रहा है।

तो फिर शक्ति का पुंज घड़ियाल भावुकता से हीन हो तो क्या हर्ज; पर वह अपनी प्रेयसी और भोजन पर लड़-भिड़ सकता है– शक्ति का प्रदर्शन कर सकता है। तो फिर कविता छंदों में ही थोड़े ही हुई। वह तो जीवन की निर्झरी है, जो बिजली की चमक, बादलों की गरज, सरिता के गांभीर्य, वायु के झकोरों, पुष्पों की गंध और गरीबों की आहों में से वह निकलती है और कवि के हृदय में भावों द्वारा एकत्रित होकर शब्दों द्वारा प्रगट होती है, उसके हृदय-दर्पण द्वारा प्रतिबिम्बित होकर क्रांति की आग बरसाती है, शांति की सरिता बहाती है, और मानवी चरित्र को अदृश्य माध्यम से नीचे से बहुत ऊँचा—संसार की गंदगी से ऊपर—उठाती है। घड़ियाल की धज, उसकी शक्ति, उसका आकार मरघिल्लों के लिए अच्छा सबक था और मुझ-जैसे छुद्र व्यक्ति के लिए साम्यवाद का पाठ। मगर के शिकार में यह वेदांत, साहित्य और साम्यवाद का पचड़ा कहाँ से और क्यों कूद पड़ा ! शिकार में तो बस मारधाड़ और अरर-धम होना चाहिए। यह अप्रासंगिक दार्शनिक और साहित्यिक चर्चा क्यों ? गंगा की गैल में मदार के गीत कैसे ? नहीं यह चर्चा अप्रासंगिक नहीं है। कोई भी चर्चा मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण के बिना— गूढ़ दृष्टि के बिना— टिकाऊ नहीं। और शिकार में जिसने त्याग, मर-मिटना और सहिष्णुता और सहनशीलता नहीं सीखी और कल्पनाशक्ति को नहीं पैनाया, उसका शिकार खेलना विशेष लाभदायक नहीं।

× × ×

तीन-चार मिनट में घड़ियाल ने अपनी थूथन ऊपर को की। गंगावाहन ने न जाने क्या सोचा कि उठी हुई गर्दन और तूमड़ी पर हम लोग मुग्ध हो गये। क्या वह गोह से कुछ कह रहा था ? क्या अपनी साथिन को सचेत कर रहा

था कि राइफलधारी हत्यारे उनकी जान के गाहक---हम लोग---उनके अनिष्ट पर उतारू थे। पर गोह तो टस-से-मस न हुई। न तो वह उसके साथ चलने को राजी हुई और न उसने उसे कुछ प्रोत्साहन ही दिया। पर घड़ियाल धीरे-से पानी की ओर बढ़ा और बतख की भाँति पानी पर तैरने लगा। उसकी तूंबी से सीटी की --सी-सी-- ध्वनि हुई, मानो बिगड़कर वह कह रहा था---

"उन्हें भी जोशे-उल्फ़त हो तो लुत्फ उठे मुहब्बत का।
हम ही ग़र दिन-रात तड़पे तो फिर उसमें मज़ा क्या है।"

और थोड़ी देर में वह पानी में बैठ गया।

× × ×

लगभग घंटे भर बाद हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे, और यह अनुमान गलत निकला कि घड़ियाल फिर निकलेगा। चौंककर वह नदी में गिर गया था और गोह के रेती पर पड़े रहने के कारण वह फिर निकलेगा--हमारा ऐसा खयाल था; पर नदी पार करके उधर गये, घड़ियाल का पता तक न था और गोह वहीं पड़ी थी। बारह-तेरह फीट लंबी और कोई तीस-चालीस गज के फासले पर। हम उसे आसानी से मार लेते; पर हम तो घड़ियाल के पीछे पड़े थे। हमारा खयाल था कि गोह के आकर्षण से घड़ियाल फिर निकलेगा। शिकार में सावधानी और प्रतीक्षा ऐसे हैं, जैसे बिजली के बिजलीघर। हम दोनों---राजकुमार कटियारी और मैं---ने तपस्या आरम्भ कर दी। नदी-किनारे प्रतीक्षा की धूनी रमाकर, रायफलें भरे, खड़ी धार के सहारे खाकी कपड़े पहनने के कारण आस-पास के दृश्य के रंग से मिले हुए गुमसुम बैठे थे। हाथों में रायफलें हमारे शरीर का भाग ही प्रतीत होती थीं। आँखों के पलक ही चलते थे और प्रतिक्षण घड़ियाल के निकलने की आशा थी। सूस और मछली की तड़प से हमारे दिल भी तड़प जाते कि घड़ियाल निकल रहा है। जबतक गोह ऊपर पड़ी थी तबतक हमें पूरी आशा थी कि घड़ियाल उसके पास जरूर आयगा। गोह निधड़क पड़ी थी। कभी हमारी ओर देख लेती सतर्क होकर, कभी मुँह खोलकर अपनी दंतावली का प्रदर्शन करती। थोड़ी देर बाद उसकी बेचैनी बढ़ी और ऐसा मालूम हुआ मानो गोह घड़ियाल

के प्रति अपनी उपेक्षा के प्रति पश्चात्ताप कर रही है--प्रौढ़ा कलहांतरिता नायिका के समान।[१] और थोड़ी बेचैनी के बाद वह भी पानी में सरक गई।

गोह के चले जाने पर हम लोग बड़े हताश हुए। मिकनातीस ही चला गया तो फिर उससे खिचने वाली चीज ही क्यों आयगी। पर फिर भी हमने प्रतीक्षा और आशा का सहारा न छोड़ा। गोह शाम हो जाने के कारण शिकार पर गई हो और घड़ियाल उसकी तलाश में पानी से उछल सकता था और हम उस पर अब भी निशाना ले सकते थे। झुटपुटा होने में अभी आधा घंटा तो था ही; मन मारकर बैठ गये। आध घंटे की प्रतीक्षा के बाद अपने प्रयास में विफल होकर हम उठे और सवारियाँ मँगाने को कहा। तय किया कि एक आदमी कल तैनात कर देना चाहिए जो घड़ियाल के निकलते ही खबर दे और नदी के पास हुल्लड़ न होने दे --घड़ियाल को बिदकने न दे।

नदी-तट से हम १०-२० गज ही आगे बढ़े होंगे कि एक गड़रिया का लड़का भागता हुआ आया और बोला कि घड़ियाल घाट पर पानी के किनारे छिपा बैठा है, भेड़-बकरी पकड़ने की घात में। इसलिए वह अपनी भेड-बकरियों को घाट पर पानी पिलाने नहीं ले गया।

---

१. "ए अलि एकंत पाय पायन परे हे आय,
हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों;
कहै पद्माकर वे रूठि गे सो ऐसी भई,
नयनन तें नीद गई हाय रे दबारे सों।
रैन-दिन चैन है न, मैन है न हमारे बस,
ऐन मुख सूखत उसास अनुसारे सों;
प्रानन की हानि-सी दिखान सी लगी है हाय,
कौन गुन जानि मान कीन्हों प्रान प्यारे सों॥"

नोट—उपर्युक्त लक्षण प्रौढ़ कलहांतरिता नायिका का कविवर पद्माकरजी ने दिया है।

—लेखक

सुनकर हम लोग दंग रह गये हैं, और कहा, "लड़के तू पागल तो नहीं हो गया। हम लोग जहाँ प्रतीक्षा में बैठे थे वहाँ से हमारी बायीं ओर चालीस-पचास गज की दूरी पर कच्चा घाट था और वहाँ घड़ियाल किधर से चला गया।" लड़के ने कहा—"चलिये न, मैं अभी उसको दिखा दूँ।"

"चल चुपचाप"—मैंने कहा।

रेमिंग्टन में २२० ग्रेन के कारतूस भरे। आगे-आगे मैं, मेरे बराबर गड़रिये का लड़का, पीछे राजकुमार कटियारी रेमिंगटन भरे नपे-तुले कदमों से चुपचाप आगे बढ़े। घाट के करीब झाऊ की झाड़ से छिपे हुए, पर आँखों को घाट की ओर धीरे-से करके जो देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। पानी में नदी के किनारे सटे हुए झाऊ की काली जड़-सी पड़ी दिखाई दी—अचल; पर उस अचल पदार्थ में मेरी तेज आँखों ने दो चल-बिन्दु—आँखें—भाँप ली। अचल-से पदार्थ में लगी भूखी आँखों ने समझ लिया कि मन-चीती खुराक—मानवी शरीर का मीठा माँस—करीब ही आया। वे घड़ियाल की आँखें थीं—भूखी और आतुर। वे प्रणय के लिए भूखी और आतुर न थीं वरन् भूख की ज्वाला को शांत करने के लिए। प्रणय से दिल और दिमाग में क्रांति हो जाती है, पर भूख की अग्नि प्रणय की अग्नि से कहीं प्रलयकारी है। घड़ियाल भी भूखा था और घाट पर आने वाले को पकड़ने की ताक में था। हमें देखकर उसने अपनी आँखें बंद कर ली ताकि मैं नदी किनारे पानी पीने बढ़ूँ; पर उसे क्या मालूम था कि उसकी आँखें सदा के लिए बंद करने, उसकी प्रणयकेलि का अंत करने को मेरी प्रेयसी भी तैयार थी। घड़ियाल झपकी आँखों से अपने आक्रमण के आसन पर तैयार बैठा था, मुझसे सात-आठ गज की दूरी पर। उसके जादू-भरे 'नयना सितमगर' एक बार मेरी ओर हुए और फिर घात में झपके, उधर मेरी रायफल ने दन्न-से उसके दिमाग में गोली धर दी। शीघ्र ही राजकुमार कटियारी ने भी उसके दिल में एक गोली रसीद की। धाँय-धाँय हुई। मैंने एक और फैर किया—अरर धम ! नदी का दिल दहल गया, पक्षी थर्राये और घड़ियाल की खोपड़ी से एक फुट ऊँचा खून का झरना सा निकला। घड़ियाल ने जो पल्टा लिया तो रायफल को पटककर मैं नदी की ओर भागा कि कहीं वह भाग न जाय। मुझे नदी की ओर भागते देख राजकुमार कटियारी चिल्लाये,—"मास्टरसाहब, आप क्या गजब करते हैं, रुकिये !" पर,

मैं तो उत्सुकता और उत्तेजना की सजीव मूर्ति था। न रहा गया। काबू की बात न थी। कूदकर घड़ियाल की पूँछ पकड़ ली और सहायता के लिए चिल्लाया। खैर तो यही हुई कि घड़ियाल निर्जीव हो चुका था, नहीं तो पूँछ के तनिक से झटके में वह मेरा भुरता कर देता। घड़ियाल पकड़ने का मेरा प्रयास ऐसा ही था जैसा कुत्ता हाथी को पकड़ने का प्रयास करे।

× × ×

घड़ियाल १५ फुट और ८ इन्च लम्बा था। लढ़ी में लदवाकर उसे लाया गया। जटायु के कुटुम्बीजनों ने उसके माँस पर खूब महामहोत्सव मनाया।

: ४ :

वे जीते कैसे हैं ?

: १ :

युक्तप्रांत के एक प्रसिद्ध नगर में, एक दिन, बयासी वर्ष के एक वृद्ध अपने डेढ़ वर्ष के पोते को लेकर द्वार पर बैठे थे। बच्चा हँस-हँसकर दादा की नाक और मूँछें पकड़ने की कोशिश करता। प्रेम-विह्वल बूढ़े दादा अपने सिर को हिला-हिलाकर बच्चे की ओर ले जाते। जन्म और मरण की सीमाएँ मिली हुई हैं, और बुढ़ापे और बालपन की सीमाएँ भी मिलती हैं। दुधपिया नाती और बूढ़े दादा का मिलन बालरवि और डूबते सूरज के समन्वय का दृश्य पैदा कर रहा था।

दादा बच्चे को खिलाने में तन्मय थे कि एक आगंतुक ने पूछा—"कक्का, बेटे की अपेक्षा दादा को नाती से अधिक प्रेम क्यों होता है ?"

बूढ़े ने कहा—"यह तो सीधी सी बात है। बनिए को असल की अपेक्षा ब्याज से अधिक मोह होता है। असल तो सुरक्षित है ही, ब्याज की वृद्धि से बनिया सुखी हो····।"

वाक्य खत्म भी न हो पाया था कि टन-टन-टन की आवाज करती साइकिल दरवाजे पर आ खड़ी हुई। "कक्का, अपना तार लो,"—कहते हुए हरकारे ने तार का लिफ़ाफ़ा बूढ़े दादा को दिया। बूढ़े दादा 'असल तो सुरक्षित है ही' की भावना में पगे तार को लेकर उठे। नाती उनके गले से लिपटा था, जैसे छौआ अपनी माँ से चिपट जाता है।

बूढ़े दादा ने पड़ौस के एक महाशय से तार पढ़वाया। तार को पढ़कर पड़ोसी घबरा गये; पर उन्होंने बनावटी विस्मय से कहा--"कक्का, तार तो पढ़ा नहीं जाता। न जाने क्या लिखा है ?"

नाती को पुचकारते और दबदोरते हुए वृद्ध महाशय दो और पड़ौसियों के पास पहुँचे; पर उन्होंने भी बूढ़े को तार का मजमून बताने में टाल-मटोल की।

झल्लाते हुए वृद्ध महाशय डाकखाने की ओर चले। बगल में पोता था और हाथ में तार का लिफाफा। बयासी वर्षों के भार से लदे हुए बूढ़े महाशय हिलते-डुलते डाकखाने पहुँचे और तारबाबू की ओर तार बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"अरे भैया, कैसे तार तुमने लिखौ ऐ। काउ पै पढ़ौई ना जातु।"

तारबाबू ने विषाद से कहा—"कक्का, पढ़ा तो जाता है; पर किसका पत्थर का दिल है, जो आपसे कहे कि आपका छोटा लड़का गुजर गया !"

अनभ्र बज्रपात हुआ। बूढ़े महाशय के जर्जर हृदय में गोली-सी लगी। आँखों के सामने अँधेरा छा गया और लड़खड़ा कर वह गिर गये। बयासी वर्ष का पिंड नाती को सँभालता हुआ धरती पर छटपटाने लगा। सुरक्षित मूल अकस्मात खो गया। बस, ब्याज का लौंदा बूढ़े के करीब गिरकर रोने लगा।

थोड़ी देर में बूढ़े बाबा को चेत हुआ। उनका रोम-रोम काँप रहा था। शरीर के अवयवों ने जवाब-सा दे दिया था। दिल के दोनो द्वारों—आँखों—से गरम सोते चलने लगे। नाती को टटोलकर उन्होंने छाती से लगाया।

कई आदमियों ने सँभालकर उन्हें उठाया। सारा शरीर थरथरा रहा था; पर सहमे-सिकुड़े नाती को बूढ़े ने छाती से लगा रखा था।

दो फर्लांग की दूरी बैठ-बैठकर काटी। वृद्ध महाशय दस कदम चलते कि पैर जवाब दे जाते और उन्हें बैठना पड़ता। बैठते ही उन्हें महात्मा तुलसीदास की ये प्रसिद्ध चौपाइयाँ याद आ जातीं :—

सुत बिन नारि भवन सुख कैसे। उपजत घटा जात नभ जैसे।
काल कर्म बस होंइ गुसाईं। बरबस रात दिवस की नाईं।
सुख हर्षे जड़ दुख बिलखाईं। दोउ सम धीर धरें मन माहीं।

गिरते-पड़ते, नाती के वात्सल्य की डोरी में बँधे और पुत्र-वियोग की अग्नि में धधकते वृद्ध घर आये।

बूढ़े बाबा अब भी जीवित हैं; पर उनकी कमर-सी टूट गई है। कई पोतों और बड़े पुत्र के सहारे ने उनके घाव पर पपरी-सी डाल दी है। शायद तुलसीदास की उपर्युक्त चौपाइयों ने बूढ़े के घुने शरीर को खड़ा कर रखा है।

क्या वह उन्हीं के सहारे जीवित हैं ? सम्भवतः हैं ? अब न सही, उस समय तो उन अमर चौपाइयों ने उन्हें सहारा दिया था।

: २ :

सन् १९२४

युक्त प्रांत के एक अति छोटे गाँव में एक व्यक्ति देहरादून से लीचियाँ लेकर आता है। सुबह का सुहावना समय है। लीचियों को देखकर उस व्यक्ति का समवयस्क चचेरा भाई आग्रह करता है कि आमों के साथ लीचियाँ खाई जायँ। आम लाने के प्रस्ताव का विरोध किया जाता है; पर स्नेह के सामने किसकी चली है !

पेड़ पर जाकर अट्ठाईस वर्ष के नौजवान भाई ने पके आम हिलाए, और नीचे उतरने लगा; पर जब जमीन पन्द्रह फुट रह गई, तब उसका पैर डिग गया। वह सिर के बल जमीन पर गिर पड़ा और एक घंटे के भीतर ठंडा हो गया !

लीची लाने वाला व्यक्ति और अन्य लोग लाश को श्मशान ले गये। चिता जैसे ही रो-रोकर धधकी, वैसे ही यह मालूम हुआ कि आसपास के मूक पेड़ भी खड़े-खड़े आँसू बहा रहे हों। चिता से लौ उठी, मानो मृतक युवा ने कराहकर अपने उनहत्तर वर्ष के पिता की ओर देखा, पिता के दिल की आग भी लपकी चिता की आग से मिलने को, परंतु कई आदमियों ने मिलकर बूढ़े पिता को चिता पर कूदने से रोक लिया।

संसार के सबसे बड़े डाक्टर--समय ने—बिलखते पिता के दिल के घाव पर मरहम-पट्टी की; पर उसके दिल में अट्ठाईस वर्ष के लड़के के निधन की टीस बराबर बनी ही रही।

छोटा लड़का डाक्टर बना। नाम और दाम उसने दोनों कमाये। बूढ़े पिता को चारों धाम की यात्रा कराई।

सन् १९३५

छोटे लड़के डाक्टर की उमर चौंतीस वर्ष की होने आई। डाक्टर बेटे के यश और उसके कुटुम्ब की वृद्धि से बूढ़े बाप का, मझले लड़के की मौत का घाव कुछ सूख-सा गया था। उसकी दुःखद स्मृति कुछ धुँधली-सी पड़ने लगी थी, पर एक दिन शहर के लोगों को उन्मतता सूझी। उन्होंने डाक्टर के घर में आग

लगादी और डाक्टर मय अपने बच्चों के घुटकर खत्म हो गया।

जमुना किनारे लाशों की ढेरी लगी और सबकी होली फूँकदी। अस्सी वर्ष के पिता को न जाने कितने लोगों ने चिता पर कूदने से रोका। बेगुनाहों की चिता की लपटें जमुना के दिल को जला रही थीं। अस्त-व्यस्त और पागल की सी आकृति वाला पिता लोगों की देख-रेख में घर लाया गया।

सन् १९३७

बूढ़े पिता का अड़तालीस वर्ष का लड़का भी दो-तीन दिन के बुखार में चल बसा। बूढ़े की व्यथा का अनुमान ही किया जा सकता है, वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती।

सन् १९३९

बड़े लड़के की अठारह वर्ष की लड़की विधवा हो गई। बूढ़े की उमर चौरासी वर्ष की है। वह जीवित हैं; वह जिंदा मुर्दा हैं, क्योंकि "वही है मौत जो जीना हराम हो जाय।"

लीची के लाने वाले व्यक्ति ने बूढ़े से बोलना बंद कर दिया है। किसलिए? इसलिए कि उसे बूढ़े ताऊ से मिलने की हिम्मत नहीं। क्या कोई दुनिया में ऐसा व्यक्ति है जो इस अवस्था में उन्हें सान्त्वना दे सके? किस मुँह और किन शब्दों में उन्हें कोई सांत्वना दे!

प्रत्येक की जुबान से यही निकलता है, कि परमात्मा ऐसी यातना किसी को न दे। पर यह नहीं बताया जा सकता कि बूढ़े 'जीते कैसे हैं?'

: ५ :

शैतानी समूह

पिल्ला बैठा यों ही खुजा रहा था कि पास से उड़नेवाली मक्खी पर उसने झपट्टा मारा। भाग्य से वह खाली गया। अच्छा ही हुआ, क्योंकि पिल्ले ने जिसे मक्खी समझा था, वह मक्खी न थी, वरन् राज-बर्र थी—जिसके डंक के मारे आदमी का हाथ कई दिनों तक बेकार हो जाता है। पिल्ला बहुत ही बेचैन था और खेलने के लिए किसी चीज को चाहता था।

उसके समीप चारों ओर भिन्न-भिन्न उमर के अनेक कुत्ते जंगल की बेगरी छाया में सो रहे थे। मध्यभारत के जंगलों में, झाड़ियों और घने पत्तों के पेड़ों की कमी नहीं; किन्तु ग्रीष्म में पेड़ों की पत्तियाँ गिरने लगती हैं, सो, इस समय पत्तियाँ तपी पृथ्वी पर टप-टप करके गिर रही थीं। पेड़ों की छाया कम होती देख वे कुत्ते सरक-सरककर झाड़ियों के नीचे आ रहे थे। कुत्तों के कान खड़े थे। उनकी पूँछ काली थी, बगलें तथा पीठ लाल और पेट कुछ पीलापन लिए हुए।

चढ़ती जवानी के जोश को रोकना कठिन है। इसलिए डेढ़ महीने का पिल्ला, झुलसाने वाली सूर्य-किरणों में बैठा हुआ, खेलने के लिए किसी साथी की तलाश में था। पर उसका कोई भाई-बहिन खेलने को राजी न हुआ। वह बैठा हुआ, जीवन की अकर्मण्यता पर कुछ सोच रहा था कि उसकी नज़र एक चलती परछाईं पर पड़ी। सूखी घास पर एक विचित्र जीव जा रहा था। वह आकार का भौंडा था। उसकी पीठ पर कुब्ब था। भूरी और काली धारियाँ उसकी बग़ल में थीं और रीढ़ की हड्डी पर खड़े हुए बाल थे। उसकी मुखाकृति भयंकर थी और उसके आतंकपूर्ण दाँतों से उसके मुँह पर गुर्राहट के चिह्न चिर-अंकित थे। वह चरख (Hyena) था! भेड़िया के बराबर बड़ा था—शेर से अधिक दृढ़ जबड़ोंवाला, पर चूहे से भी अधिक कायर।

डरावनी चालढाल से उसने सोते कुत्तों की ओर देखा और चला गया। ज्योंही उसकी नज़र पिल्ले पर पड़ी, उसकी आँखों में क्रूर ज्योति आ गई।

पिल्ला भी उठा । पर वह यह निश्चय नहीं कर पाया कि उसे उसपर गुर्राना चाहिए या उस अजनबी के पास जाकर खेलने की प्रार्थना करनी चाहिए। चरख भूखा था और अनजान पिल्ला, जिसने मैत्री-संकेत से पूँछ हिलाई, उसके लिए स्वादिष्ट ग्रास होता । पर चरख ने उसके सोते हुए साथियों की ओर एक बार फिर देखा और अपने स्वभाव के विपरीत इस नतीजे पर आया कि सोते कुत्तों से छेड़खानी अच्छी नहीं । चरख नहीं चाहता था कि पिल्ले को छेड़कर वह पूरे झुण्ड का शिकार बने ।

चरख ने बुद्धिमत्ता की । उससे कहीं अधिक वीर जानवर, जो एक चट्टान की छाया से पिल्ले को देख रहा था, उसी नतीजे पर पहुँचा था । वह बाघ—तेन्दुआ —था जो अति साहसी और वीर होता है, साथ ही कुत्ता खाने का शौकीन भी । पर बाघ अपनी शक्ति-सीमा को समझता था और वह कोई मूर्ख बाघ नहीं था । खुली लड़ाई में वे छोटे जानवर, जो झाड़ियों में पड़े सो रहे थे और गीदड़ से छोटे ही होते हैं, बाघ के सामने १०-२० होने पर भी नहीं ठहर सकते थे । पर वह एक ही साथ ६-७ दर्जनों से नहीं लड़ना चाहता था । और बाघ को जो दिखाई पड़ रहे थे, वे तो जंगली कुत्तों के दल का एक भाग ही थे ।

जंगली कुत्ते भारतीय जंगलों के सब से अधिक भयानक और सब से अधिक संहारक जीव होते हैं । यहाँ तक कि शेर भी उनसे भागता है और यह उसका भाग्य ही समझना चाहिए, जो उनसे उसका पिण्ड छूटे ।

यदि ये कुत्ते शेर को मारना चाहें, तो निःसंदेह वे उसे मार ही डालेंगे। वे उसका पीछा करेंगे, बिना एक सैकिंड के रुके हुए और बड़ी क्रूरता के साथ, दिन में और रात में भी, तपी भूमि पर झुलसानेवाली धूप में भी वे उसके पीछे लगे रहेंगे । वे उसको आराम नहीं लेने देंगे, सोने नहीं देंगे -- यहाँ तक कि इतना भी अवकाश न देंगे कि वह किसी पास के सोते में एक बार जीभ भी मार ले । शैतान की भाँति वे उसके निकट, आगे, पीछे, बगल में और उसके चारों ओर रहेंगे—और ठीक इतनी दूर पर कि उसकी मार या पकड़ से बचे रह सकें । आखिर शेर थककर, प्यास से व्याकुल होकर, घबराकर डगमगाने लगता है और कुत्तों को वह अवसर देता है, जिसके लिए वे प्रतीक्षा करते रहते हैं - अर्थात् जब वे उस पर झपट्टा मार सकें और वह झपट्टा तलवार के

घाव से कड़ा घाव करता है, जिससे उसका पेट फट जाता है और वह अपनी अँतड़ियों में उलझता हुआ गिर पड़ता है ।

अनमने पिल्ले को यह पता न था कि वंश-परम्परा से वह इतना भयंकर है । यद्यपि इस बात को चट्टानवाला बाघ जानता था । चरख जब उससे नहीं खेला, तो वह फिर बैठ गया । पिल्ला करता ही क्या ? अपने सभ्य भाई की भाँति उसके पास साधन नहीं थे । चबाने के लिए बूट नहीं थे । अपने भाग्य की परीक्षा के लिए वहाँ पर सड़कें भी न थीं, जिनपर पड़कर वह भोंपू बजवा लेता ।

वह पिल्ला जंगली कुत्ते का पिल्ला था । भारतवर्ष में जंगली के मानी असभ्य हैं । पर, यह पिल्ला तो बड़ा ही सरल था । अन्त में वह उठा और पास की झाड़ी में घुसकर अपने साथी पिल्ले के साथ खेलने का प्रयत्न करने लगा । पर वह पिल्ला गुर्राया । वह वास्तव में जंगली था, जो अकारण उस पिल्ले पर गुर्राया । जब कभी जंगली पिल्ला दंगली पिल्ले को देखता, तभी वह उस पर गुर्राता । जब से जंगली और दंगली ने आँखें खोली, तभी से जंगली दंगली से डाह रखता था । पर, दंगली बड़ा नेक था । जंगली झुण्ड के किसी भी पिल्ले से न खेलता था । दंगली को खेलने के लिये अपनी ओर आते देख जंगली ओठ सिकोड़कर, दाँत निकालकर, उस पर झपटा । दंगली स्वभाव का नेक था । पर कायर न था । दोनों में कुश्तम-कुश्ता हो गई । काटने, भँभोड़ने और लड़ने के शब्द से झाड़ियों की शान्ति भंग हो गई । झुण्ड के बड़े-बूढ़ों ने आँख खोलकर देखा । एक बड़ा कुत्ता उठा और उन दोनों को अलग-अलग कर दिया । जंगली को जब अलग किया गया, तब भी वह गुर्राता रहा । पर. दंगली पूँछ हिलाता हुआ और पिल्लों के साथ खेलने चला गया ।

सायंकाल को कुत्तों का समूह आगे बढ़ा । वे जंगल के पशुओं का इतना संहार करते हैं कि जंगल के एक भाग में बहुत दिनों तक नहीं रह सकते । प्रायः रात में शिकार करते हैं और जहाँ होकर निकलते हैं, वहाँ दावानल की भाँति स्वाहा करते जाते हैं । बचेखुचे जानवर भयभीत होकर, भाग जाते हैं । उस बच्चेवाली बेचारी चीतल या साँभर की कष्ट-कथा का कौन वर्णन कर सकता है, जिसका वे पीछा करें । घबराई हुई माँ पहले तो बच्चे को अपनी

बगल में करके उसकी रक्षा करती है, लात और सींग से कुत्तों पर प्रहार करती है। पर उसका यह सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है। उसके पीछे से उसके बच्चे की मृत्यु-वेदना-सूचक चीख आती है और वह समझती है कि कुत्तों के पैने दाँत उसकी बगल फाड़ रहे हैं। और ज्योंही वह बच्चे की रक्षा के लिए मुड़ती है, त्योंही खूँख्वार कुत्ते उसको उसके अधमरे बच्चे के ऊपर गिरा देते हैं।

बड़े से बड़ा बारहसिंहा, जिसके सींग की मार से आदमी तुरन्त मर जावे, इन कुत्तों के लिए कोई चीज नहीं। वे उसको मारकर ही छोड़ते हैं। जंगल के असली शिकारी शेर और बाघ जंगली कुत्तों से उतने ही डरते हैं, जितना कि निर्दोष भोले हिरन और अन्य जानवर। कुत्तों का दल जिस जंगल में होकर निकलता है, उसके सब जानवरों में भगदड़ मच जाती है। बचेखुचे हिरन और सूअर जंगलों को छोड़कर दूर भाग जाते हैं। तब शेर और बाघ भी भोजन के अभाव से उस जंगल को छोड़ देते हैं।

दंगली धीरे-धीरे बढ़ने लगा और शिकार में जाने लगा। उसकी चालढाल उसके भावी नेतृत्व की सूचक थी। और जबसे उसने पहली बार चीतल के बच्चे पर किया था, तब से उसकी धाक जम गई थी। वह अति तीव्रगामी, अथक और निडर था। और जब सन्तुष्ट होकर पेड़ों के नीचे लेटता था, तब वह अति सीधा था। पर जंगली इससे बड़ी ईर्ष्या रखता था। यों तो एक दल के कुत्तों में प्रायः लड़ाई हुआ ही करती और दंगली-दल में भी कभी-कभी कुत्ते आपस में इतने घायल हो जाते कि कोई मर भी जाता; पर, जंगली का बैर आदमियों का-सा था। दंगली जंगली से लड़ाई बचाया करता था, इसलिए नहीं कि वह कायर था वरन् इसलिए कि वह नेक था। पर, जब सहनशीलता की सीमा का उल्लंघन हो जाता, तब दंगली जंगली की उद्दण्डता के कारण उससे भिड़ पड़ता और उसे लोहूलुहान कर देता। जंगली लँगड़ाता, कराहता और घाव चाटता हुआ एक ओर को हट जाता और मन में वैर की अग्नि प्रज्ज्वलित करता।

इसी प्रकार कुत्तों का यह दल शिकार करता हुआ घूमता फिरा। एक दिन यह दल तापती नदी के किनारे आया। इस स्थान पर, गर्मियों में तापती

का पानी बहुत गहरा था। और स्थानों में नदी सूख जाया करती थी। कुत्तों को यह स्थान अति प्रिय था, क्योंकि वहाँ पर दूर-दूर के जानवर पानी पीने आते और कुत्तों को शिकार की सुविधा कर देते थे। प्रायः प्रातःकाल के शिकार के उपरान्त कुत्ते पानी पीने आया करते और वहाँ पर पड़े पेड़ के-से तने जैसी कुछ चीजों को देखते।

बड़े-बूढ़े कुत्ते उन तनों के पास न जाते और दूसरों को भी न जाने का आदेश करते। पर, युवक हठी होते हैं। एक दिन एक हठी और खोजी ताजा जवान कुत्ता एक तने को सूँघने गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उस तने का एक सिरा एक बड़े कटे हुए मुँह के रूप में परिवर्तित हो गया और पीले दाँतों की कतारें खुलीं। डरा हुआ कुत्ता ज्योंही बचने को पीछे हटा, त्यों ही उसने एक चपेट मारी और कुत्ते को ऐसे पकड़ लिया, जैसे बगला मेंडकी को पकड़ता है। 'तना' उसे लेकर पानी में कूद गया और आँख से ओझल हो गया। ये तने न थे, मगर थे।

बरसों बीत गये। दंगली और जंगली पूरी उमर के कुत्ते हो गये थे और वे दल के अगुआ थे। जंगली उससे अब लड़ता न था, हाँ, उसकी ईर्ष्या कम न हुई थी। जब कभी किसी मादा के ऊपर, उनमें अनबन हो जाती, तो जंगली को लेने के देने पड़ जाते।

प्रति वर्ष दल में कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता था। पुराने कुत्ते छूटते जाते थे। बुढ़ापे या बीमारी के कारण और विशेषकर भूख के कारण उनकी दुर्गति होती थी। दल आगे बढ़ जाता था और वे पीछे रह जाते थे। फिर वे घिसटकर झाड़ियों में घुस जाते और लम्बी घास में मरने के लिये छिपे रहते, जिससे उन पर गृद्ध-दृष्टि न पड़ने पावे। पर यह सब प्रयत्न व्यर्थ रहता। आकाश में एक काला बिन्दु धीरे-धीरे बढ़ता और झप-झप करता नीचे उतरता। उसको नीचे आते देख चारों ओर से गृद्ध टूट पड़ते। तब ये यम-सहोदर, मरते हुए कुत्ते के पास जाते और जब कुत्ते की टिमटिमाती हुई जीवन-ज्योति बुझने को होती और वह बेचारा जोर लगाकर गुर्राता, तो वे पीछे को फुदक आते। फिर जब कुत्ते का सिर नीचे गिर पड़ता, तब वे एक दम टूट पड़ते और कीकी, खीखी शब्द करते हुए, लाश को ढँक लेते और लड़ते-झगड़ते, पंख फटफटाते हुए, अपनी चोचों से माँस नोंच खाते।

अपने दल के बूढ़े और अपाहिजों का कुछ खयाल न करके वे जंगली कुत्ते आगे बढ़ते जाते । शेर और बाघ उनको तरह ही देते थे ।

पर प्रत्येक नियम का अपवाद होता है । एक घनी घाटी में, जहाँ से एक नाला तापती की ओर जाता है, अपनी शक्ति के मद में चूर एक जवान शेर रहता था, जो अपने को विशाल भुजदण्डों के बल पर, आस-पास के जंगल का राजा समझता था । जंगल में इस शेर के समान और कोई तेजस्वी तथा बलवान न था । जंगली हाथी और गैंडा, जिसके लिए शेर को मार्ग छोड़ना पड़ता है, मध्य प्रान्त के जंगलों में नहीं हैं, इसलिए, यह शेर अपने आप को निरकुश और सब कुछ समझता था ।

यद्यपि जंगली कुत्तों का गश्त लम्बा-चौड़ा होता है, तो भी उस शेर को उनके देखने का अवसर न मिला था । एक दिन की बात है कि शेर ने एक हिरन को पानी पीते में धर दबोचा और अपना पेट भर कर तथा शेष अंश फिर के लिए वहाँ छोड़, वह घनी छाया में सुख की नींद सो गया । थोड़ी देर बाद उसकी नींद विचित्र प्रकार की ध्वनि—हू-हू-हू-ही-ही-ही—से, जिसको उसने कभी नहीं सुना था, भंग हो गई और आँख खोलकर जो देखा, तो १०-१२ विचित्र प्रकार के छोटे गीदड़—उसके भोजन को खा रहे हैं । वायु लाश की ओर से शेर की ओर को चल रही थी, इसलिए कुत्तों को शेर का कुछ पता न चला । सन्देह दूर करने के लिए हरी पत्तियों में-से उसने सिर उठाकर अच्छी तरह देखा और दंग रह गया । शेर का भोजन गीदड़ खावें—और वह भी उससे छीनकर । इस अभियोग का दण्ड केवल एक था—मौत !

चुपचाप बिना आहट के मदमाता शेर उठा और जमीन पर अपनी मखमली गद्दियाँ रखता हुआ, आगे बढ़ा और आड़ ही आड़ कुत्तों से १० गज दूरी पर आ गया । पत्तियों के हरे पर्दे से उसने चोरों को देखा । बिना आवाज की गुर्राहट में उसने अपने ओठ पीछे सिकोड़े—उसकी शक्ति का प्रदर्शन हुआ—उसकी मूँछें टेकुए-सी खड़ी हो गयीं—और फिर एकदम वह जंगल का कानून तोड़ने वालों पर टूट पड़ा । दो तो एकदम ही कराह कर ठण्डे हो गये । दो को उसने दस-बीस गज दूर पटक कर चकनाचूर कर दिया । दो-एक घायल

हुए और शेष १०-१२ विचित्र चीख से भागने लगे। शेर उनके पीछे भी पड़ा; पर एक-दो छलाँग के बाद तवे-सी तपती धरती आ गयी। वह रुक गया। क्योंकि शेर धूप पसन्द नहीं करता। बचे-खुचे कुत्ते नाले के ऊपर चढ़ गये। शेर गुर्राता हुआ अपने भोजन के पास लेट गया। लेटते ही मरे कुत्ते की गन्ध उसकी नाक में आई। पंजे से उसने उसे अपनी ओर खींचा और जरा चखा। बड़ा मजा आया। वह कुत्ते को खाने लगा। एक हड्डी उसके मुँह में लगी थी, कि नाले के चारों ओर से भाँय-भाँय और हू-हू की ध्वनि उसकी ओर आने लगी। उसको उन्हीं चोर-उचक्कों का भान हुआ, जो उसके भोजन पर आये थे। जरा रुक कर सुना, तो मानो नाले पर किसी ने हल्ला बोल दिया हो। चारों ओर से चक्रव्यूह तंग-सा होता आता था। भाँय-भाँय, हू-हू उसके पास ही आने लगी। जंगली कुत्ते भौंकते नहीं, यह तो उनके सभ्य भाइयों का ही गुण है। उनकी आवाजें भय उत्पादक थीं। पर, शेर जानता था कि उससे छेड़-खानी करने की किसकी मजाल ! पर, कुत्ते उसके चारों ओर आ गये। यह उसकी शान के खिलाफ था, कि वह उन तुच्छ जन्तुओं को अपने ध्यान में भी लाता, पर उसका यह कम अपमान न था कि वे उसके चारों ओर खड़े थे ! अन्त में शेर रक्त नेत्रों से मुँह फाड़े उठा और आवेश में आ कर उन पर गुर्राया। कुत्ते आगे बढ़ने से तो रुके, पर, भयभीत होकर भागे नहीं, जैसी कि वह आशा करता था। प्रति-उत्तर में वे भी गर्दन के बाल फुलाये शेर पर गुर्राने लगे, और अपनी थूथड़ी आगे करके, दाँत निकाल, उस पर अपना रोष प्रकट कर रहे थे। शेर को बड़ा आश्चर्य था। उसके भाई-बिरादरी तो उससे ऐसा कर सकते थे; पर, ये तुच्छ प्राणी उसके मुकाबले का साहस करते हैं ! वह आक्रमण-आसन पर बैठा। उसके सामने वाले कुत्ते कुछ पीछे हटे। इतने ही में बगल की झाड़ी से एक कुत्ते ने झपट्टा मारा और उसकी बगल पर वार किया। विद्युत गति से शेर मुड़ा और पीछे से किये गये वार से उसने रक्षा की, क्योंकि शेर के लिए सबसे बड़ा अपमान पीछे से घाव कराना है। शेर बड़ी विकट दहाड़ के साथ अपने आक्रमणकारी पर टूटा। पर शेर के अन्धा-धुन्ध आक्रमण ने उसे एक काँटेदार झाड़ी से टकरा दिया, जिसमें होकर उसका शत्रु भाग गया। ज्योंही वह काँटों से सुलझा, त्योंही उसको अपनी पूँछ में पीड़ा मालूम हुई और ज्योंहीं वह पूँछ की ओर मुड़ा, तो देखता क्या है कि एक

कुत्ता उसकी पूँछ को छोड़कर दूर भाग गया है। इस घोर अपमान से तो शेर आग-बबूला हो गया और प्रत्येक समूह पर अन्धाधुन्ध टूटा। वह किसी को पकड़ नहीं पाता था और शीघ्र ही पीछे के हमले के बचाव के लिए उसे मुड़ना पड़ता था। अन्त में जब इस नट-नृत्य से उसकी नाक में दम आ गया, तब वह नाले की खुली जगह में खड़ा हो गया और अपने शत्रुओं के निकट-आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

पर, कुत्ते मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे, अभी अथक तथा विकट शत्रु से इस प्रकार पेश नहीं पावेंगे। वे उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे और कभी-कभी उसकी ओर आते प्रतीत होते थे, ताकि शेर यह समझे कि वे आक्रमण कर रहे हैं। पागल बनाने वाली कुत्तों की ये हरकतें उसके लिए असह्य थीं। लज्जा और क्रोध से शेर नाले में चलने लगा। यह ख्याल करके कि उसकी हार हुई और रणक्षेत्र उसे छोड़ना पड़ा, शेर को बड़ा क्रोध आ रहा था। पर ऐसे शत्रुओं से कैसे पार पाता। इसलिए वह अपना भोजन छोड़कर मैदान से हटा।

पर, यह जान कर वह बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ कि लुटेरे लूट के सामान से ही सन्तुष्ट न थे। उसने यह बात महसूस नहीं की, कि खून का बदला खून है, और लड़ाई की लूट से उन्हें सन्तोष न होगा। कुछ कच्ची उमर के कुत्ते लाश की ओर गये और उसे खाने लगे; पर शेष कुत्ते शेर के साथ थे। साथ क्या, कुछ उसके आगे-आगे भागते थे, कुछ बगल में दुलकी चाल से चलते थे, कुछ पीछे भी थे। वे बहुत समीप रहते थे; पर, उसकी पहुँच से दूर। कभी-कभी कुछ बहादुर कुत्ते उसकी बगल पर झपट्टा मारने का प्रयत्न करते थे।

एक कुत्ता उसके सिर के निकट आगे रहता और मुड़-मुड़ कर उसके पुट्ठे की ओर देखता था। यह कुत्ता, जो पहले कभी पिल्ला था, दंगली था। वह अब कुत्तों के इस दल का नायक था, और जंगली और दो-एक उसी की प्रकृति जैसों को छोड़, सबने उसका नेतृत्व स्वीकार किया था। इस समय जंगली भी था, पर पीछे। इस लड़ाई का सेहरा दंगली और उसके स्वामिभक्त साथियों पर ही था।

दंगली को इस समय केवल एक ध्यान था ; केवल एक, जो जंगली कुत्तों में विशेष रूप से पाया जाता है—अपने साथियों के हत्यारे से बदला लेना। शेर को अपने पीछे के शत्रुओं पर ही क्रोध आ रहा था और मुड़-मुड़ कर वह उन्हीं पर गुर्राता जाता था। उसको यह पता न था कि आगे वाले—आगे वालों में अति समीप वाले—कुत्ते के वार के मानी हैं, मौत।

अन्त में क्रोध और झुँझलाहट से शेर रुका। वे भी रुक गये। वे अब नाले के खुले भाग में पहुँच गये थे। वहाँ पर झाड़ियाँ न थीं और नाले के किनारे ऊँचे समकोण थे। शेर गुर्राहट के साथ किनारे की ओर बढ़ा और पहाड़ से पीठ लगा कर बैठ गया। कुत्ते भी उसके चारों ओर अर्ध-चन्द्राकार पिछले पैरों पर बैठ गये। शेर ने अपने धूर्त्त शत्रुओं के खुले मुँह और लटकती हुई जीभें देखीं। क्या ऐसे तुच्छ, नाचीज प्राणी जंगल के राजा की कुछ हानि कर सकते थे? शेर को स्वयं इस बात पर विश्वास न था। दम लेकर वह उनको घृणा की दृष्टि से देखता हुआ, चला; पर, उसकी बगल की आकस्मिक पीड़ा ने उसे पीछे देखने को मोड़ा। देखा तो उसकी बगल के घाव से खून बह रहा था और एक तेज कुत्ता मुँह मारकर सट-से एक ओर निकल भागा। पीड़ा और क्रोध से पागल हो कर वह आक्रमणकारी पर टूटा—पर हाथ कुछ न आया।

तब तो शेर के हृदय में पहली बार डर घुसा। ये हाथ न आने वाले शत्रु बड़े भयानक थे। तो भी, उसने सोचा, वह, यदि उन्हें मार नहीं सकता तो, उनसे पिण्ड तो छुड़ा सकता है। इसलिए, नाले में एक ओर खुला स्थान पाकर, वह ऊपर को छलाँग मारकर चढ़ा और ऊपर मैदान में आकर तीव्र गति से, सूखी घास और कँटीली झाड़ियों के मैदान में होकर, भागा। धूप बहुत तेज थी और मृगराज को महसूस भी बहुत हुई। पर क्या करता। समय ही ऐसा था।

लम्बी दौड़ प्रारम्भ हुई। तपे हुए मैदान में शेर ने पीछे को देखा। शत्रुओं से वह पिण्ड न छुड़ा सका। दंगली उसके आगे ही था और कुत्ते इधर-उधर, बगल से पीछे और पीछे से बगल में, आते जाते थे; साथ ही जब-जब शेर के मुँह मार जाते और खून की धारें बरसा देते थे, पर, दंगली एक ही नेम

और एक ही व्रत से अपनी ड्यूटी पर जमा था। वह अपनी और शेर के बीच की दूरी को उतनी ही बनाये हुए था। उसकी मार का समय अभी नहीं आया था। कभी धीमी गति और कभी-कभी सरपट चाल से मध्यान्ह तक शेर चलता ही रहा। तब उसको लम्बे पेड़ों की टेढ़ी कतार दिखाई पड़ी। वह उसी ओर ओर को बढ़ा, क्योंकि वह जानता था कि वहाँ नदी थी। कदाचित् वहाँ उसे शरण मिले। नदी के गहरे जल में उसके अथक शत्रु उसका पिण्ड छोड़ें। वह वहाँ पहुँचा और नदी में घुस पड़ा, पर कुत्ते उसके उतने ही समीप थे। पहले तो शेर कमर तक पानी में रुका और एकदम सिर पानी में डुबो दिया। फिर तीन-चार बार लप-लप की और एक समतल चट्टान पर चढ़कर बैठ गया। डूबते सूरज की किरणें शक्ति-स्वरूप शेर के पुट्ठों पर पड़ रही थीं और कुत्ते उसके चारों ओर चट्टान पर बैठे हुए थे। उनकी टकटकी उसी पर लगी हुई थी। शेर अब भयभीत हो गया था। पर, कुत्ते भी कूद और तैरकर नदी पारकर गये और जब शेर किनारे पर खड़ा हुआ था और जब उसके करीर से बूँदें टपक रही थीं, कुत्ते भी उसके आगे, पीछे और बगल में खड़े थे।

तब शेर ने अपनी गति कुछ तेज कर दी। गोधूलि तक दौड़ होती रही। शेर दो-चार बार रुका, पर उसके शत्रु उसके निकट ही आते गये और वह भी चलता ही गया। समतल भूमि में, ऊपर, नीचे और फिर ऊपर और झाड़ियों में शिकार और शिकारी रात में दौड़ते ही रहे।

अन्त में चन्द्रमा निकला और उनका मार्ग प्रकाशमय हो गया। श्रम और नींद के अभाव से थककर शेर एक चट्टान के नीचे रुका और उसने अपनी पूँछ एक ऊँचे पत्थर के सहारे रख ली, जिससे पीछे के आक्रमण से रक्षा हो। कुत्ते हाँपते हुए उसके आसपास पड़े थे। उस आसन पर जैसा और जो कुछ आराम उसे मिला उसने लिया। सोने का वह साहस कर नहीं सकता था क्योंकि जरा आँख झपकी तभी कोई न कोई कुत्ता उस पर हमला कर देता था। आखिर उसे थोड़ा-सा बदला मिला, क्योंकि उसने दो कुत्तों को पकड़ लिया और एक चपेट में ही उनका भुर्ता बनाकर फेंक दिया। वे अनुभवहीन नये कुत्ते थे।

कुत्ते तो बारी-बारी से सो सकते थे। पर, शेर सोने का साहस न कर

सकता था । प्रातःकाल ही शेर फिर चला । कुत्ते उसके साथ थे । वह अन्धा धुन्ध भागा जाता था । नीचे जमीन की जलन और ऊपर सूरज की गरमी । शेर का बुरा हाल था । ठीक दोपहर के समय भागते-भागते वह हाल के जले जंगल की ओर हो लिया, जिसमें कई इंच गहरी राख थी और जो वायु-वेग से उड़-उड़कर उसकी नाक और आँखों को भर रही थी ।

बस अब अन्त आ गया था । शेर इन यातनाओं को अधिक न सह सका । खाँसते-खखारते और छींकते हुए वह रुका । काँपा । और फिर चलने का प्रयत्न करते ही लड़खड़ाया ।

एक खूँख्वार जवान कुत्ता उसकी पिछली सीधी टाँग पर टूटा और छुरे जैसे पैने दाँत नसों ओर जोड़ों में गाड़ दिये । एक दूसरे ने बायीं टाँग के माँस और पुट्ठे में दाँत घुसाकर हड्डी पर हमला किया । दीर्घकाय पीला जानवर—शेर—मानो ताँतों से जकड़ा हो ।

और तब दंगली ने वार किया । उसका अवसर अब आया था । शेर के मुँह पर उछलकर, बुलडौग की भाँति, उसने शेर की नाक पकड़ ली और उसके सिर को नीचे गिराकर उसे नितान्त असहाय कर दिया । तब कुत्ते उसकी टाँगों, गर्दन, पेट, नितम्ब, चलती हुई बगलों आदि पर चारों ओर चिपट गये और एक ने नीचे घुसकर उसके पेड़ को फाड़ दिया ।

शेर सिर के बल आगे को गिरा कि कुत्तों ने उसको ऐसे ढँक लिया जैसे गिद्ध किसी मरे जानवर को ढँक लेते हैं । घोर पीड़ा में शेर ने दंगली को हिलाकर फेंकने का प्रयत्न किया । इधर से उधर छटपटाया । टाँगें पीटीं । पर बहादुर दंगली इधर-उधर पटके जाने पर भी नाक से लगा रहा—अपनी पकड़ नहीं छोड़ी । शेर अन्तिम वेदना में पड़ा तड़प रहा था ।

इतने में वे कुत्ते भी आ पहुँचे जो इस शिकार में फिसड्डी रहते थे । उनमें सबसे आगे जंगली था । उसने शेर के सिर पर वार करना चाहा । पर, ज्योंही वह शेर पर टूटा त्योंही उसे दंगली की खुली गर्दन दिखाई पड़ी; क्योंकि दंगली के दाँत शेर की नाक से जकड़े हुए थे ।

जंगली ने दंगली की गर्दन पर अपने दाँत गाड़ दिये और उसका मुँह पुराने शत्रु के खून से भरने लगा। मरता हुआ शेर एक बार और छटपटाया और दंगली को पंजे से हटाने के प्रयत्न में अन्तिम वार किया। पर, उसका पंजा जंगली पर पड़ा, जो दंगली की गर्दन से लटका हुआ था। थाप की मार से जंगली की कमर चकनाचूर हो गई और वह दंगली को कराहता हुआ छोड़-कर एक ओर जा पड़ा।

जब शेर की रग-रग में-से जान निकल गई, तब दंगली ने अपनी पकड़ छोड़ी और अपने घाव को चाटता हुआ वह चला गया। जंगली दंगली को जाता हुआ देखकर, पड़ा-पड़ा गुर्राया और समाप्त हो गया।

: ६ :

यमदूत से साक्षात्

राजनीतिक जीवन का तत्त्व है स्वातंत्र्य-युद्ध में मोरचा लेना । मनुष्यत्व का सार है दुखी और पीड़ितों की निष्काम सेवा करना और वीरता तथा साहस की कसौटी है औसान रखते हुए आतंकमयी परिस्थिति का मुकाबिला करना । जो स्वतंत्रता की कोरी बातें करते हैं और लड़ाई से दूर भागते हैं, जो अपनी सेवा की डींग हाँकते हैं और मरने तथा विरोध करने से हिचकिचाते हैं, वे हैं कायर और ढोंगी—बेपेंदी के लोटे, तनिक-सी विरोध-लहर, कठिनाई और दचोके से गायब हो जाते हैं । चट्टान पर खड़े पौधे की भाँति, जो बरसात के बाद सूर्य ताप की थोड़ी-सी चोटों के कारण ही सूख कर निर्मूल हो जाता है ।

सांयकाल को बाबू शरत् कुमार घोष अपने बंगले के बरामदे में बैठे हुए थे, जब उनका नौकर रामसिंह छुट्टी माँगने आया । रामसिंह की वृद्धा माँ करीब के गाँव में बीमार थी, इसलिए वह एक रात की छुट्टी चाहता था । उसने बड़ी दयनीय आकृति से कहा—"हुजूर ! वैसे तो आपको अकेला छोड़कर जाने की मेरी तबियत नहीं करती; पर मेरी माँ का रोग असाध्य है । वह बचेगी नहीं, इसलिए मैं आज जाना चाहता हूँ ।" रामसिंह की प्रार्थना इतनी युक्ति-युक्त थी कि घोष बाबू से इन्कार करते न बना । किसी की माँ मरणासन्न हो, तो कौन भला आदमी अपने नौकर को छुट्टी न देगा । पर घोष बाबू को नौकर को छुट्टी देने के कारण काफी तकलीफ उठाने की सम्भावना थी । बात यह थी कि घोष बाबू का बँगला आबादी से दो-तीन मील दूर था और उनके अन्य नौकर शाम होते ही अपने घरों—कई मील दूर—को चले जाते थे और उस बँगले में घोष बाबू और उनका नौकर रामसिंह ही अकेले रात को रहते थे ।

बँगला एक बड़े खेत के बीचोबीच था और खेत के चारों ओर जंगल था, जिससे लोग भयभीत थे ।

घोष बाबू गर्मी के कारण बँगले के किवाड़ खुले छोड़ कर सोया करते थे। पर अपनी माँ के पास जाने से पूर्व रामसिंह ने घोष बाबू से आग्रह किया था कि बँगले के किवाड़ रात में खुले न छोड़े जायँ, क्योंकि जंगल में 'फाऊ'-शब्द उसी दिन सुना गया था। 'फाऊ शब्द से लोगों के हृदयों में कँपकँपी हो जाती।

'फाऊ' एक छोटे जानवर को कहते हैं, जो बिल्ली के बराबर बड़ा होता है और उसका नाम उसकी बोली 'फाऊ' के कारण रखा गया है। लोगों का विश्वास है कि 'फाऊ' मनुष्य-भक्षी शेर या बघेरे के आगमन का सूचक है—एक प्रकार की लेन डोरी-सी। फाऊ शेर के साथ क्यों रहता है, सो कहना कठिन है; पर देहात के लोगों के लिए 'फाऊ' एक दैवी सूचना है, जिससे लोग शेर के उत्पातों से कुछ सचेत हो जाते हैं।[१]

'फाऊ' के विषय में कुछ संदिग्ध होने पर भी घोष बाबू ने रामसिंह को आश्वासन दिलाया कि वह उनकी तनिक भी चिन्ता न करे, क्योंकि उनकी बन्दूक की गोली किसी भी शेर के स्वागत के लिए काफी थी और इसीलिए उन्होंने रामसिंह को आदेश दिया कि जाने से पूर्व वह उनकी बन्दूक और कुछ गोली के कारतूसों को उनकी चारपाई के निकट वाली अलमारी की दराज में रख दे।

घोष बाबू का सोने का कमरा कुछ छोटा-सा था। उसमें दो द्वार थे। एक तो बरामदे की ओर और दूसरा भोजन के कमरे की तरफ। उनका पलंग बरामदे वाले दरवाजे के सामने के कोने में था। पलंग का सिरहाना और

---

१ फाऊ या 'फियाउली' गीदड़ को छोड़कर और कोई दूसरा जानवर नहीं है। ब्रज के देहात में फियाउलो एक विचित्र जानवर को कहते हैं, जो किसी के मरने से पूर्व गाँवों में बोलता है—'फेकत्ति है' (देहाती बोली में)। शेर या बघेरे को देखकर डर से गीदड़ फाऊ या हाव शब्द करता है और उसे ही लोग फाउ या फियाउली कहते हैं। साधारणतया गीदड़ हू-हू हुएँ-हुएँ करता है, पर डरकर वह फाऊ या हाव करता है। इन पंक्तियों के लेखक ने इसकी खासी जाँच की है। —लेखक

उसका भीतरी भाग दोनों दीवारों से लगभग एक फुट की दूरी पर थे। पलंग से सटी श्रृंगार-मेज थी, इसलिए पलंग के चारों ओर—उसके बाहरी भाग को छोड़कर—सुकड़-सुकड़ाकर ही जाया जा सकता था। पलंग की खुली ओर को—कोने की दीवारों से लगे पलंग की ओर के दूसरी ओर को—चार फुट की दूरी पर घोष बाबू की दराजों वाली अलमारी (Chest of drawers) रखी थी, जिसके सबसे नीचे वाले खाने में रामसिंह ने बन्दूक रख दी थी। अलमारी के बगल से लगा बरामदे वाला दरवाजा था।

पलंग काफी भारी था। उसके पाये ६ इंच व्यास के होंगे, पाटियों तथा सेरों की मुटाई भी इतने से कम न थी। इस प्रकार पलंग सात वर्ग फुट का रहा होगा; पर वह बहुत ऊंचा न था। हाँ, उसके नीचे कोई भी आदमी रेंगकर इधर-उधर जा सकता था। पायों से लगे डण्डे थे, जिनके ऊपर कोनों से मसहरी के चारों कोने बँधे थे।

घोष बाबू बरामदे के किवाड़ बन्द करके अपने पलंग पर जा लेटे और लगे निद्रा देवी का आह्वान करने। पर अपनी सौत गर्मी के कारण वह न आई। रूठी रानी को घोष बाबू ने बहुत मनाया, मिन्नतें कीं, गिड़गिड़ाये भी और कई घण्टे तक उसके विरह में तड़पे, करवटें बदलीं, पर सब बेकार। मोहक गन्ध पाकर भौंरे फूलों की स्तुति के लिए भागे चले आते हैं और मन्द समीर के झकोरों से निद्रादेवी थके-माँदों के आलिंगन को दौड़ी आती है और आँखों पर जादू फेरकर लोगों को मन्त्र-मुग्ध कर लेती है। पर घोष बाबू के कमरे में गर्मी का साम्राज्य था। निद्रादेवी कैसे आती? अन्त में, परेशान होकर और किसी भय की आशंका न करके, उन्होंने बरामदे का दरवाजा खोल दिया और पलंग पर लेट गये। शीतल वायु के झकोरों ने नींद रानी को गुदगुदाया। गर्मी कमरे से भागी और घोष बाबू सुखनिद्रा के अधीन हो गये।

कितनी देर तक वह सोये, सो तो कहना कठिन है, पर घबराहट और किसी भयंकर दुर्घटना की आशंका की भावना से चौंककर जग गये। कमरे में कुछ दम घुटाने वाला वातावरण था। हवा गरम और दुर्गंधमयी थी, मानो

कोई दूसरा बड़ा जीव भी वहाँ हो। कुछ मिनटों के लिए घोष बाबू उनींदे-से, तन्द्रावस्था में रहे और उन्होंने अपने शरीर को जरा भी हिलाया-डुलाया नहीं। उनकी अधखुली आँखें ऊपर को थीं। उनकी इच्छा थी कि तनिक उठकर या करवट लेकर देखें कि आखिर कमरे में है क्या? पर दम घुटाने वाली हवा ने उनकी तन्द्रा को भंग ही न होने दिया। उनकी अर्ध मूर्च्छित अवस्था अभी ज्यों की त्यों थी कि उन्हें ऐसा भान हुआ, मानो उन्होंने अपने पलंग के निकट एक गहरी और कर्ण-कटु साँस सुनी हो। आखिर वह ध्वनि क्या थी? कम होने के बजाय वह प्रति क्षण अधिक गम्भीर और कड़ी होती जाती थी। वह डरावनी ध्वनि इतनी कम्पोत्पादक और मोहक थी कि करवट लेने तक का साहस न होता था। तनिक-सी असावधानी, कुछ गड़बड़ और शोरोगुल से न मालूम कौन-सी मुसीबत आ जाय, इसी विचार से घोष बाबू मृतप्राय पड़े रहे। उस रहस्यपूर्ण और विचित्र साँस लेने की-सी आवाज से बचने का सरल उपाय यह था कि औसान खता न होने पाये और हिला-डुला न जाय। पर यह जानना भी आवश्यक था कि वह विचित्र आतंकपूर्ण आवाज थी क्या। उसका एक ही ढंग था और वह यह कि सिर धीरे-धीरे उधर फेरा जाय, जिधर से—पलंग के बाहर की ओर से—आवाज आ रही थी। धीरे-धीरे, शरीर को बिना हिलाये, अस्पष्ट-सी गति और अधखुले नेत्रों से घोष बाबू ने अपना सिर घुमाया। आँखों की सम्पूर्ण ज्योति उस आवाज के मार्ग पर जा रही थी, जैसे कोई अन्धा व्यक्ति परिचित मार्ग पर बिना किसी गलती के चला जाता हो। कई मिनटों में जैसे ही आधा सिर उस ओर घूमा, वैसे ही घोष बाबू की अधखुली आँखों पर बिजली-सी गिरी—

कफस के सामने बिजली कुछ इस तरह चमकी
नजर में फिर गई तसवीर आशियाने की

घोष बाबू ने देखा, उनके पलंग और अलमारी के बीच एक भीमकाय शेर बैठा है। उसका सिर घोष बाबू की ओर था, कान खड़े हुए और आँखें—वे जादू-भरी आँखें—घोष बाबू पर केन्द्रित थीं। चन्द्रमा की धुँधली रोशनी में

शेर की विकरालता और भी बढ़ गई थी। कुछ देर के लिए घोष बाबू संज्ञा-हीन हो गये। साक्षात् यमराज, शेर के रूप में, बिना किसी नोटिस के समीप ही विराजमान थे। घोष बाबू को भान हुआ कि उनके जीवन की कुछ ही घड़ियाँ शेष हैं।

थोड़ी देर के लिए उनके शरीर में रक्त-संचार रुक-सा गया—लकवा-सा मार गया उन्हें। दो मील तक उनकी आवाज को भी सुनने वाला कोई न था, इसलिए चीखना फजूल था। और बन्दूक ? बन्दूक को उन्होंने कितना सम्भाल-कर दराज वाली अलमारी में रखा था, वक्त जरूरत के लिए। पर यमदूत राम ने पहले से ही प्रबन्ध कर रखा था। अलमारी तक हाथ कैसे पहुँचता, उसके और पलंग के बीच ही तो शार्दूल डटा था। प्रबन्ध सब ठीक था। बस, अपने जबड़े की हथकड़ी में पकड़ने-भर की देर थी, या फिर एक ही चपत में घोष बाबू की अक्ल दुरुस्त करनी थी। एक ही क्षण में घोष बाबू की सारी जीवन-चर्या उनके दिमाग में चक्कर काट गई। पर शेर ने उन्हें अब तक छोड़ क्यों रखा था ? उसे तो उन्हें सोते में ही उठा लेना चाहिए था। इतनी देर क्यों हुई ? यदि किसी प्रकार उसके आक्रमण न करने का कारण मालूम हो जाता, तो शायद उसके उपयोग से घोष बाबू की जान बच सकती थी। घोष बाबू के पक्ष में एक विशेष बात यह थी कि यमराज के प्रथम दर्शन की प्रतिक्रिया के उपरान्त उन्होंने हवास ठीक रखे। और, होश-हवास की ढाल पर ही वह शेर से भुगत सकते थे। पर निहत्थे आदमी के शेर से मुकाबला करने के मानी हैं, भुनगे का हाथी से भिड़ना। क्या मसहरी देखकर शेर सशंकित हो गया था ? शायद मसहरी के भीतर निस्तब्ध व्यक्ति को पड़ा देखकर शेर ने मसहरी-युक्त पलंग को अपने फँसाव के लिए जाल समझा हो। आदमी का आकार बनाकर जाल के भीतर कोई चीज रख दी हो और उस पर आक्रमण करते ही शेर किसी दाँव या मृत्युपाश में फँस जाय, इसी डर से वह प्रतीक्षा कर रहा था। क्योंकि मसहरी के भीतर यदि कोई जीवित प्राणी होता, तो कुछ हिलता-डुलता जरूर। घोष बाबू ने भी समझ लिया कि उनके बचने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि चुपचाप पड़ा रहा जाय, टस से मस न हुआ जाय, ताकि

शेर को यह शंका बनी रहे कि उसके पकड़ने और मारने के लिए धोखाधड़ी की गई है।

घोष बाबू, इसीलिए गुमसुम, एक ही करवट, पड़े रहे। एक-एक क्षण पहाड़-सा प्रतीत होने लगा। साधारण स्थिति में, अपनी इच्छा से, एक आसन पर कोई घन्टों पड़ा रहे, पर मन मसोसकर, मूर्तिवत् होकर, और सो भी मौत के निकट अचल पड़ा रहना टेढ़ी खीर है। पर मौत का डर स्नायुओं और पुट्ठों तक को स्टील-सा बना देता है। मौत के डर से मरघिल्ले लोग भी विकट साहस दिखाते हैं। पर, छींक, खाँसी और खुजलाहट भी वे बलाएँ हैं कि खुजलाने को उँगलियाँ बरबस चली जाती हैं, चाहे कोई कितनी ही भयावनी स्थिति क्यों न हो। खाँसी और छींक से भुगतना तो और भी कठिन है। गले में सरसराहट होती है। हाथ से गला दबाने और मुँह बन्द करने पर भी भीतर से बारूद फिकती है और खुल्ल तथा ठुल्ल हो ही जाती है। और नाक को दबाते-दबाते छींक की टीं भी निकल पड़ती है। नाक को कहीं बुरी तरह पकड़ भी लो, तो छींक आँखों और खोपड़े से निकलने की कोशिश करती है। घोष बाबू पर भी खाँसी ने—गला साफ करने की प्रवृत्ति ने—हमला-सा कर दिया और बहुत गला घोंटने पर भी तनक ठुल्ल-सी ध्वनि निकल ही गई। उधर शेर की शंका-समाधि भंग हुई। वह फौरन् खड़ा हो गया और घूरकर उसने घोष बाबू की ओर देखा तथा अपना सिर धीरे-धीरे उधर को बढ़ाया। अभी तक उसे कुछ शंका बनी रही, इसीलिए उसने एकदम आक्रमण नहीं किया। पर उसका भारी सिर मसहरी को दबाता हुआ आगे की ओर बढ़ा, मानो वह घोष बाबू के सिर का करीब से निरीक्षण करना चाहता हो। घोष बाबू ने शेर की भयंकर साँस महसूस की, पर टस से मस होने का उनका साहस न हुआ। इतने ही में मसहरी की रस्सी चट से टूट गई और मसहरी झट से घोष बाबू के ऊपर आ गिरी। बिजूका हट गया। मोह-पाश कट गया और शेर के लिए अब मैदान साफ था। पर जैसे ही मसहरी गिरी, शेर कुछ चौकन्ना हुआ और उसी क्षण विद्युत-गति से घोष बाबू मसहरी से सरककर दीवार के सहारे फर्श पर जा बैठे। मसहरी गिरते ही, एक-दो सेकन्ड बाद ही, शेर कंपोत्पादक गुर्राहट के साथ पलँग पर कूद पड़ा, यह समझकर कि

उसकी खुराक वहीं पड़ी होगी। शेर को शकोशुभा तो रहा ही न था। अपना शिकार पलँग पर न पाकर उसने पलँग को चीरना-फाड़ना शुरू किया। पलँग पर वह फट ही तो पड़ा, मानो वही उसकी रखी-रखाई खुराक निगल गया हो। क्रोध की मूर्ति शेर ने कुछ देर तक पलँग को नोंचा-खोंचा, और फिर अलमारी के करीब कूद पड़ा। उसकी पूँछ इधर-उधर तड़प रही थी और क्रोध से भन्नाते हुए ओठों, को पीछे खींचे हुए वह अपने शिकार को इधर-उधर देख रहा था। जरा देर में ही उसने अपने शिकार को पलँग के नीचे, दीवार की ओर गठरी-सा बना देखा और एक भयानक दहाड़ के साथ उसने अपना सिर पलँग के नीचे घुसाया। पर पलँग की पाटी से वह टकराया। क्रोधोन्मत्त शेर ने सिर भीतर करने के लिए ठोकर मारी। सिर के एक धक्के और फिर दूसरे तथा तीसरे धक्के से पलँग तो बुरी तरह हिला, पर उसका सिर भीतर न जा सका। तब शेर ने और भी जोर से आक्रमण किया भीतर घुसने को और उसका सिर पलँग के नीचे आ ही गया। उसके माथे की खाल छिल गई थी और खून तेजी से बह रहा था। पलँग की पाटी के किनारों से शेर के सिर में आघात पहुँचा था। उसने पलँग के नीचे घुसने के लिए फिर ज़ोर लगाया। पर संकीर्ण पलँग और अलमारी के बीच उसका भारी शरीर कमान-सा बन गया। भीतर घुसने के लिए, शरीर को उधर बढ़ाने के लिए, पीछे गुंजायश ही न थी।

शिकार और शिकारी आमने-सामने पड़े थे। घोष बाबू ने अपने शरीर को सिकोड़कर दीवार से लगा रखा था, मानो उसे फोड़कर उसमें घुसना चाहते हों। शेर की खूनी और मशाल सी जलती आँखों का सामना उनसे न होता था। शेर के कीले तो मानो बाबू साहब के शरीर को फाड़ ही रहे थे। शेर की आँखों, दाँतों और आकृति ने मोहनी-सी फेर दी थी। उन्हें नशा-सा आने लगा। घोष बाबू चूहे की भाँति शेर के शिकंजे से बचने का उपाय कर रहे थे। कुछ मिनट तक दोनों उसी आसन पर डटे रहे। वे मिनट युग के समान बीते। रौरव नरक की यातनाएँ भोग रहे थे घोष बाबू। तेज और रुकी हुई गुर्राहट शेर के भयानक जबड़ों से आ रही थी। वह गुर्राहट केवल क्रोध की ही न थी, वरन् पीड़ा की भी थी। पीड़ा खुरसट और चोट की नहीं

थी, वरन् पाटी का तेज किनारा उसकी गर्दन को भी काट रहा था। जब गर्दन की पीड़ा उसके क्रोध से भी बढ़ गई, तब शेर ने सोचा, लानत है इस प्रकार के शिकार से। सिर निकाल कर शिकार को किसी दूसरे ढंग से पकड़ना चाहिए, इसलिए उसने अपना सिर बाहर खींचने का प्रयत्न किया। सिर बाहर निकालने को उसने जोर लगाया। घोष बाबू के सामने आशा की एक किरण-सी दिखाई पड़ी। शेर का सिर बाहर निकलता ही न था। वह फँस गया था। शेर ने निकलने के लिए क्रोध-पूर्ण जोर लगाया। पलँग डगमगाने लगा। शेर के जोर लग रहे थे गाउ-खाउ, पलँग कर रहा था खटर-खटर और घोष बाबू का दिल धड़क रहा था धक-धक। डर इस बात का था कि शेर के कशमकश से कहीं पलँग न पलट जाय। पलँग पलटते ही घोष बाबू के भाग्य का तख्ता भी निस्संदेह पलट जाता, इसलिए घोष बाबू ने अपनी ओर की पाटी जोर से पकड़ ली, ताकि पलँग का बोझ कुछ और बढ़ जाय। शेर जोर लगा रहा था निकलने को, और घोष बाबू पाटी नीचे खींच रहे थे। पर घोष बाबू का प्रयास कुछ नहीं के बराबर था। पलँग की धमा-चौकड़ी, ऊपर और नीचे की गति, झूले की-सी जारी थी। शेर का प्रत्येक झटका प्रबल होता जाता था। पलँग बहुत जोरों से हिलने लगा, मानो घबराकर वह कहीं भाग जाने का प्रयत्न कर रहा हो। सारे शरीर की ताकत इकट्ठीकर और जान की बाजी लगाकर घोष बाबू एकदम पलँग पर आ गये, ताकि वजन ठीक हो जाय और पलंग न पलटे। कुछ देर के लिए पलँग की तौल ठीक हो गई। पर प्रश्न यह था कि उस प्रकार की स्थिति कब तक चलेगी? किसी-न-किसी झटके में शेर अपना सिर निकाल सका, तो एक क्षण में ही घोष बाबू की चटनी बना देगा। यदि कहीं बन्दूक हाथ लग जाती, तो शेर को जहन्नुमरसीद कर दिया जाता। पर बन्दूक तो दराज में बन्द थी और शेर के पिछले भाग ने दराज को और भी कड़ा कर दिया था। उसका हाथ आना असम्भव था।

शेर ने भी भाँप लिया था कि उसका शिकार आँखों से ओझल होकर उसकी खोपड़ी पर—पलँग पर—सवार था, इसलिए अपनी मुक्ति के लिए और भी जोर के झटके लगा रहा था।

हथियार कोई था नहीं। हाँ, चौके में एक बड़ा शिकारी चाकू जरूर था,

पर वहाँ तक जाना आसान न था। पलंग से उठते ही कहीं शेर न निकल पड़े। घोष बाबू की स्नायुओं की शक्ति भी क्षीण हो रही थी। उनके दम का भी दम निकल रहा था। ईश्वर का नाम लेकर घोष बाबू चुपचाप उठे, सिरहाने की ओर से दवे पाँव फुरती से गये और चौके से बड़ा शिकारी चाकू ले लाये।

दोनों हाथों से चाकू की मूँठ थामकर वार करने की कोशिश की; पर हिचकिचाहट-सी हुई, कहीं ओछा वार हुआ और चाकू का फल हृदय तक न पहुँचा तो शेर और भी उत्तेजित हो जायगा, भन्नाकर, पलँग को उलटकर घोष बाबू का खातमा कर देगा। पर मरता क्या न करता और साहसी व्यक्ति आती मौत से भिड़ता ही तो है। हाँ, एक बात साफ थी, घोष बाबू की ओर से एक ही बार हो सकता था।

शेर की अगली टाँगें झटका मारने के बाद जैसे ही रुकीं, वैसे ही पीठ में, गर्दन से कुछ हटकर, चाकू का नौइंची फल खचाक से घुस गया और वह सीधा दिल में जा बैठा।

जमीन को हिलाने वाली गर्जना हुई, फिर एक तड़प और उसके साथ धड़ाम का शब्द और उसी के साथ बेहोशी का आलम छा गया !

अगले दिन प्रातःकाल रामसिह ने उल्टे हुए पलँग के निकट खून में लथपथ शेर को मरा और घोष बाबू को बड़ी तलाश के बाद, दीवार से सटे बिस्तरे में ढँका अचेत पाया। बात यह हुई थी कि चाकू के भोंकने से शेर ने वह उछाल ली कि पलँग का सारा टाट-कमंडल उछलकर पलट गया और घोष बाबू भी गेंद की भाँति पलँग की भीतरी ओर को गिरे तथा दीवार से टकरा गये। ऊपर से बिस्तरे ने सम्पूर्ण दृश्य पर परदा-सा डाल दिया।

उस घटना के आतंक से घोष बाबू ने पन्द्रह दिन तक खटिया गोड़ी और जीवन तथा मृत्यु की तरंगों पर प्रवाहित होकर भले-चंगे हो गये।

: ७ :

आन्दोलन का पूर्वपृष्ठ

सन् १९४२ के आन्दोलन की गति-विधि को पूरी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पूर्वपृष्ठ पर एक नजर डाल ली जाय। जब हम रूस अथवा फ्रांस की राज्यक्रान्ति का विश्लेषण करते हैं, तब हम उन देशों की राज्यक्रान्तियों के पूर्व पृष्ठ का भी भली-भाँति अध्ययन करते हैं। बिना ऐसा किए वहाँ की राज्यक्रान्तियों के बुनियादी तत्वों को ठीक तौर से समझा नहीं जा सकता। सन् १९४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है। सन् १९४२ के आन्दोलन के पूर्वपृष्ठ से जो परिचित नहीं हैं, अथवा जो उसे समझने का कष्ट नहीं करते, वे अगड़म-बगड़म लिखा करते हैं और अपने मनोविकारों को ही लिपिबद्ध करके दलबन्दी के दल-दल को और बढ़ाते हैं।

यदि हिमालय में गंगाजी का मार्ग अवरुद्ध हो जाय, तो क्या नतीजा होगा? पानी रुकेगा और एक विशालकाय झील-सी बन जायगी। पानी का वेग मार्ग अवरुद्ध करने वाली चट्टानों और शिलाओं को तोड़कर अथवा हटाकर एक भयंकर तूफान पैदा कर देगा। भारतीय जन-आन्दोलन-रूपी सुरसरि के भगीरथ महात्मा गाँधी ने जन-आन्दोलन को वह गति दी कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही की सम्पूर्ण शक्ति भी उसकी धारा को न तो अवरुद्ध कर सकी और न कलुषित ही कर सकी। कई आन्दोलन चले। भारतवासियों ने काफी भुगता भी; पर स्वतन्त्रता गुलामी के गर्त्त में ही रही। और जब गत द्वितीय महायुद्ध सन् १९३९ में प्रारम्भ हुआ, तब तो भारतीय क्षोभ की सीमा न रही; क्योंकि अंग्रेजों ने विश्व-स्वतन्त्रता के नाम पर भारतवर्ष की इच्छा के बिना उसे जर्मनी और जापान के विरुद्ध युद्ध में उतार दिया। इसने भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन की नैसर्गिक गति को अवरुद्ध कर दिया। सितम्बर

१९३९ से लगाकर ८ अगस्त १९४२ तक की परिस्थिति का हमें स्थानाभाव के कारण यहाँ विश्लेषण नहीं करना है। पर इतना तो हमें लिखना ही पड़ेगा कि युद्धकालीन और युद्धोत्तर परिस्थिति की जो चेतावनी महात्मा गाँधी ने दी, उतनी और वैसी चेतावनी किसी अन्य भारतीय नेता ने नहीं दी। अन्न और वस्त्र-संकट के लिए तो जो बातें महात्माजी ने सन् १९३९-४० में कही थीं, वे अक्षरशः सत्य निकलीं। पर उस समय अधिकांश कांग्रेस-जनों को भी उस चेतावनी पर विश्वास नहीं होता था। सन् १९४१ के व्यक्तिगत आन्दोलन के दिनों में जब इन पंक्तियों के लेखक ने सत्याग्रह के लिए आज्ञा चाही, तब बापूजी ने आँखें तरेरकर कहा—"इस समय तुम्हारे जेल जाने की जरूरत नहीं है। क्या मौज करने के लिए इस समय जेल जाना चाहते हो? यह देखो, कानपुर से सत्याग्रह करने वालों की सैकड़ों की सूची मेरे सामने है! लोग समझते नहीं हैं कि कितना भयंकर आन्दोलन आ रहा है और उस समय मुझे देखना है कि कितने आदमी टिकते हैं। अभी आन्दोलन में मत जाओ। आगे के लिए तैयार रहो।" बापूजी की चेतावनी सुनकर जहाँ दिल को चैन मिला, वहाँ साथ ही साथ इस बात का कौतूहल भी हुआ कि आखिर आन्दोलन की भयंकरता किस रूप में हो सकती है। 'आज्ञा शिरोधार्य' कहकर कुटिया से बाहर निकला, तो ऐसा मालूम हुआ कि मन किसी तूफान में बहा जा रहा हो। पर बापूजी-जैसे भविष्यद्रष्टा के संकेत से शरीर में कुछ शक्ति का संचार मालूम हुआ और सहसा दिल ने कहा :—

यहाँ तो उम्र गुजरी है इसी मौजो-तलातम में,
वह कोई और होंगे सैरेसाहिल देखनेवाले।

मुझे यह लिखने में तनिक भी संकोच नहीं कि सन् १९४२ के आन्दोलन से पहले महात्मा गाँधी को छोड़कर किसी बड़े नेता का दिमाग राजनीतिक दृष्टि से साफ नहीं था। पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद और महात्मा गांधी तीनों की विचार धाराएँ एक-सी नहीं थीं—विशेषकर रूस के महायुद्ध में शामिल हो जाने के बाद। पण्डितजी के दिलो-दिमाग की रस्साकशी उनके उन दिनों के भाषणों में स्पष्ट है। कभी तो वे स्कार्च्ड अर्थ

पालिसी (Scorched Earth Policy) अर्थात् शत्रु के अपने देश में बढ़ने पर उत्पादन तथा अन्य वस्तुओं को नष्ट करने की नीतिका समर्थन करते थे और कभी उसके विपक्ष में बोलते थे । उनका मंशा कुछ भी रहा हो; पर साधारण कार्यकर्त्ता और जनता का दिग्दर्शन वे नहीं कर रहे थे । मौलाना अबुलकलाम आजाद की भी लगभग वही हालत थी । सुभाष बाबू अपने विचारों में बहुत कुछ साफ थे; पर देश छोड़कर बाहर जाने से पूर्व वे कुछ विशेष कार्य न कर सके । पर एक ही ज्वालामुखी —महात्मा गाँधी—अपने प्रवचनों और लेखों से न्याय और उत्साह का लावा उगल रहा था । सन् १६३६ से लेकर ८ अगस्त, १६४२ तक के 'हरिजन' को पढ़ जाइए । लेख क्या हैं, मानो आग्नेय अस्त्र हैं, दिल पर सीधी चोट करने वाले । जिसने भी वे पढ़े, उस पर जादू-सा हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो स्वर्ग से कोई देवदूत अपनी अमृत-वाणी से मुर्दों में जान डालने आया हो । सम्पूर्ण देश के कार्यकर्त्ता और नेता एक तरफ और महात्माजी की प्रखर सूझ एक ओर । चारों ओर क्रान्ति का वातावरण था। ऐसा मालूम होता था कि 'हरिजन' का प्रत्येक अक्षर देश में 'बारूद' बिछा रहा हो । उत्साह और आजादी की लगन पहाड़ी नदी के समान निनाद करती आ रही थी । चट्टानों को तोड़कर कब मैदान में प्रवेश करती है, इस बात का किसी को पता न था । सूबे की कांग्रेस कमेटियाँ और देश के अन्य नेता यह तो समझते थे कि आन्दोलन का कोई भयंकर तूफान आने वाला है। उसका आभास भी लोगों को कुछ मिला था । पर स्पष्ट बात न तो कही जाती थी और न कहीं लिखी जाती थी । भारतीय नौकरशाही की पूरी तैयारी हो चुकी थी । गिरफ्तारी के लिए लोगों की सूचियाँ तक तैयार हो गई थीं । उनका वर्गीकरण भी हो गया था । ऐसे आदमियों की भी सूची प्रत्येक जिले में तैयार कर ली गई थी, जो कांग्रेस से सहानुभूति रखते थे । युद्ध के आरम्भ से पूर्व जिस प्रकार सैन्य-संचालन होता है, उसी प्रकार नौकरशाही की ओर से कांग्रेस तथा आजादी के प्रत्येक आन्दोलन को कुचलने की तैयारी थी ।

सूबों के कांग्रेस-जनों की अव्यवस्था का प्रमाण इससे अधिक और क्या होगा कि आन्दोलन से पूर्व सूबों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विशेष मीटिंगें करने की

सूचनाएँ सूबे की ओर से डाक द्वारा भेजी गई। चिट्ठी-पत्रियों की सेंसरशिप जब जारी हो गई थी, तब आवश्यक पत्रों को डाक से भेजना कोई बुद्धिमत्ता नहीं थी। इसके अतिरिक्त देश में ऐसा भी वातावरण था कि कांग्रेस-जन आपस में किसी प्रोग्राम के विषय में दिल खोलकर बातें नहीं कर सकते थे। उदाहरण के लिए, यू० पी० सरकार के वर्त्तमान पार्लमैण्टरी सेक्रेटरी श्री जगनप्रसाद रावत ने मेरठ कमिश्नरी के कुछ कार्यकर्त्ताओं से चर्चा की, तो कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में काफी मतभेद हो गया। मई, १९४२ में इलाहाबाद में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के दिनों में एक गुप्त मीटिंग पं० शिवचरणलाल शर्मा एडवोकेट (जार्ज टाउन, इलाहाबाद) के मकान पर तीन दिन तक हुई। उस मीटिंग में सर्वश्री रफीअहमद किदवई, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, जगनप्रसाद रावत, द्वारकाप्रसाद मिश्र (वर्तमान माननीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र, मन्त्री, मध्यप्रदेश), निरंजनसिंह, राधेश्याम शर्मा और इन पंक्तियों का लेखक शामिल होते थे। मिश्रजी तो केवल एक दिन शामिल हुए थे और निरंजनसिंह शायद दो दिन। इन गुप्त बैठकों में आन्दोलन की रूप-रेखा पर विचार हुआ। संगठन, सैनिक-संगठन मय हथियारों के ध्वंसात्मक कार्य के लिए और आन्दोलन के लिए बजट—इन सब बातों पर काफी विचार हुआ था। मेरे सुपुर्द ध्वंसात्मक कार्य के अतिरिक्त अन्य प्रबन्ध का कार्य भी था। पालीवालजी और रफीअहमद साहब के सुपुर्द बजट तथा अन्य प्रबन्ध भी थे। यों तो काम बँटे-से प्रतीत होते थे; पर वैसे एक-दूसरे के कार्य से पूरा समन्वय था। रावतजी के सुपुर्द केवल संगठन का ही काम था। राधेश्यामजी को आवश्यकतानुसार सबकी सहायता करनी थी। मुझे आशंका इस बात की थी कि पालीवालजी और रफीअहमद साहब आन्दोलन सम्बन्धी सक्रिय काम करने से पूर्व गिरफ्तार कर लिए जायँगे। उनका फरार रहना मुश्किल-सा हो जायगा। हुआ भी ऐसा ही। यहाँ तक कि रावतजी बहुत जल्दी ही धर लिए गए। अब काम का जो बोझा मेरे ऊपर आया, उसका पाठक अनुमान लगा सकते हैं। खैर इतनी ही हुई कि राधेश्याम शर्मा की गिरफ्तारी शुरू में नहीं हुई। पर इलाहबाद की गुप्त बैठकों में जो प्रोग्राम बना, उसकी चर्चा न तो माननीय पंतजी से की जा सकती थी और न किसी अन्य कार्यकर्त्ता से। ऐसी

हालत में संगठन और कार्य की रूप-रेखा व्यक्ति-विशेष से ही कही गई। पालीवालजी, किदवई साहब और रावतजी की गिरफ्तारी के बाद मुझे ऐसा लगा, मानो किसी बीहड़ स्थान में मैं अकेला पड़ गया हूँ।

जून, १९४२ में बल्का बस्ती स्थित अपने आगरे के निवास पर एक दिन यू० पी० के एक क्रान्तिकारी महाशय आए, और उन्होंने कहा—"मुझे पता चला है कि आप आने वाले आन्दोलन के लिए कुछ तैयारी कर रहे हैं। क्यों न हम सब लोग मिलकर काम करें ?"

मैंने उत्तर दिया—' आखिर आपका मतलब क्या है ? मैं क्या काम कर रहा हूँ ?"

असल में मैं उनसे कोई बात नहीं करना चाहता था और न कोई बात बताना ही चाहता था। वे इस बात को ताड़ गए। उन्होंने कहा—"देखिए, रफी साहब की ओर से मुझे पता चला है कि आन्दोलन के लिए कुछ काम शुरू हो गया है और आप संगठन में लगे हुए हैं।"

किदवई साहब का नाम सुनकर मैं समझ गया कि आगन्तुक महाशय को हमारी बातों का आभास है ही। पर फिर भी मैंने अपनी बात न बताकर उनकी बात जाननी चाही। इसलिए मैंने उनसे कहा—"आपका क्या प्रोग्राम है और आप क्या मिलकर काम करना चाहते हैं ?"

वे बड़े निःसंकोच भाव से बोले—"क्रान्ति करनी है. और मैं यह चाहता हूँ कि जो संगठन बने, उसका हेडक्वाटर्स आगरा हो और आप उसके अध्यक्ष हों।"

मैंने पूछा—"मेरे अध्यक्ष बनने की बात तो अलग है। आप पहले यह बताइए कि आपके प्रोग्राम की रूप-रेखा क्या है और आप क्रान्ति कैसे करना चाहते हैं ?"

सहज भाव से वे बोले—"पहले हमें चार-पाँच लाख रुपए इकट्ठा करने हैं।"

मैंने कौतूहलवश पूछा—"पहले रुपये आप कैसे इकट्ठा करेंगे और रुपये आपको कौन देगा ?"

अन्यमनस्क भाव से उन्होंने कहा—"डकैतियों से।"

डकैती शब्द के सुनते ही मैंने निर्णय कर लिया कि मेरी और उनकी दुनियाएँ अलग-अलग हैं। स्कूल के विद्यार्थी-जीवन से उग्र नीति और क्रान्ति-कारियों से अपना सम्बन्ध रहा है। 'प्रताप' प्रेस में जाकर तो स्वर्गीय सरदार भगतसिंह और स्वर्गीय आजाद से भी परिचय हुआ था। जो थोड़ा-बहुत बन पड़ा, वह स्कूल और कालेज-जीवन में अन्य मित्रों के साथ किया; पर डकैतियों का मैं सर्वदा विरोधी रहा। सन् १९२० की जन-जाग्रति के बाद तो राजनी-तिक डकैतियों का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। सन् १९४२ में डकैतियाँ डालना निरीह जनता और पूंजीपतियों को ब्रिटिश सत्ता का आश्रय लेने के लिए बाध्य करना था। पुलिस और अन्य अनेक कर्मचारी चाहते थे कि डकैतियाँ पड़ें और लोग मजबूर होकर सरकारी सहायता लें। इस लेख में राजनीतिक डकैतियों का दार्शनिक विश्लेषण नहीं करना है। बस, इतना ही स्पष्ट करना है कि मैं डकैतियों का विरोधी था, इसीलिए मैं लगभग २३ डकैतियाँ रोक भी सका।

मैंने क्रान्तिकारी महोदय से कह दिया—"डकैतियों में मेरा विश्वास नहीं है और आप डकैतियों के भँवर में पड़कर कुछ डाके भले ही डाल लें, पर काम कुछ नहीं कर सकेंगे।"

आन्दोलन के प्रारम्भ होने के बाद हुआ भी ऐसा ही। मुझे यह मालूम है कि कौन-कौन व्यक्ति क्रान्ति के नामपर आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, शाहजहाँपुर, अलीगढ़, हरदोई और कानपुर के कई स्थानों में डाका डालने गए। शिष्टाचार के नाते मैं यहाँ उनके नाम नहीं दे रहा; पर उन व्यक्तियों-में से, जिनका डाके में विश्वास था और जिन्होंने डाके डाले, और जो चाहें कि उनके नाम लिख दिए जायँ, तो अपने को नाम देने में कोई आपत्ति नहीं है। अज्ञानवश कुछ लोग अपनी भूल से बहकावे में आ गये थे। वे मेरी बात

की पुष्टि में प्रमाण देने को भी तैयार हैं। जो व्यक्ति गलती से इस काम में पड़े, उनकी मुझे तनिक भी शिकायत नहीं। लोगों में उत्साह था, लगन थी। वे देश के लिए बलिदान होने को भी तैयार थे। उचित पथ-प्रदर्शन न होने से वे बहक गये। बाद में उन्होंने गलती महसूस की। पर अब भी ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका विश्वास डकैतियों में है और जिनमें डकैती से प्राप्त धन के बंटवारे को लेकर अब भी काफी झगड़ा चल रहा है। आखिर हिसाब कौन दे और किसको दे ?

× × × ×

वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। असन्तोष, दमन और क्रोध की लहर सी देश में बह रही थी। जून सन्' ४२ खतम होने आया और जुलाई का प्रथम सप्ताह आ पहुँचा। राजनीतिक वातावरण गरम होता ही चला गया। महात्मा जी की विचार-धारा प्रखरता की उच्चतम सीमा पर पहुँच गई। जो बात वे कहते थे, उसके गाम्भीर्य तक हमारे अन्य नेता पहुँच नहीं सक रहे थे। ८ अगस्त, सन्' ४२ की तारीख भी अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन के लिए नियत हो गई। ब्राह्म मुहूर्त्त में सूर्योदय की कल्पना की जा सकती है। ठीक उसी भाँति आन्दोलन-आगमन का आभास होने लगा था। उत्सुकता इस बात की थी कि आखिर महात्माजी आन्दोलन को क्या रूप देंगे। जन-श्रुतियों से बाजार गरम था। लगभग दो महीने से उस पर थोड़ा सोचा-विचारा था, इसलिए सेवाग्राम चलकर परिस्थिति का कुछ पता लगाने की इच्छा प्रबल हुई। सेवाग्राम आश्रम में कभी भी और कितने ही दिनों तक ठहरने की आज्ञा बापूजी ने दे रखी थी। इसलिए और भी आकांक्षा हुई कि सीधे वहाँ जाकर उनसे कुछ आदेश लिया जाय। वहाँ पहुँचकर बापूजी से कुछ पूछने का साहस इसलिए नहीं हुआ कि वे स्वयं देश के गण्यमान्य नेताओं से परामर्श करने में लगे हुए थे। ऐसी दशा में उनकी बातें सुनना ही श्रेयस्कर था। आचार्य नरेन्द्रदेवजी उन दिनों वहीं टिके हुए थे। उनसे बस इतनी चर्चा तो हो ही गई कि अमुक क्रान्तिकारी से भावी आन्दोलन के बारे में मेरी चर्चा हुई थी।

आचार्यजी भी आन्दोलन के विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं कर सके। यह बात २० जुलाई, १६४२ की है।

सूरत से राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के कार्यकर्त्ता श्री परमेष्ठीदासजी जैन ने जुलाई की अन्तिम तारीख को या २ या ३ अगस्त को होने वाले उनके एक अधिवेशन के सभापतित्व के लिए आग्रह किया। कई बार उनके आग्रह को मैं टाल चुका था। पर ८ अगस्त, १६४२ को होने वाले भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन की प्रेस-गैलेरी में मुझे जाना था, इसलिए सूरत जाने की भी स्वीकृति दे दी।

लेकिन सूरत जाने से पहले सेवाग्राम में २५, २६ या २७, २८ जुलाई को बापूजी की कुटिया में बापूजी के मुख से इतनी गम्भीर और स्पष्ट बातें सुनीं कि यदि बापूजी की उन बातों को रेकार्ड में भर लिया जाता, तो वह ऐतिहासिक प्रवचन औरों को भी सुनने को मिलता। उनकी बातें सुनकर ईसा के 'सरमन आन दी माउण्ट' या बुद्ध के अन्तिम उपदेशों की साक्षात् झलक मिली। मेरे शब्दों में वह जोर कहाँ? भाषा में वह ओज कहाँ? और फिर दिल की बात को क्या कोई लिपिबद्ध कर सकता है? किसमें शक्ति है, जो भावनाओं को अक्षरों के व्यवधान में बाँध सके? अनुभवगम्य बातों के लिए भाषा एक बहुत ही कमजोर साधन है। उसमें वह शक्ति नहीं, जो एक महापुरुष की वेदना को, उसके आदर्श और उसकी कल्पना को अक्षरों में सीमित कर सके। यह मेरा सौभाग्य था कि उस दिन १०-१५ आदमियों के बीच जब बापूजी ने अपना दिल श्री आचार्य बिनोबा भावे के सामने उनका मत जानने के लिए खोला, तब मैं वहीं था।

सेवाग्राम में बापूजी की कुटिया। आसमान मेघाच्छादित। तकिए का सहारा लिए हुए और टाँगे फैलाए वे बैठे थे। उनकी एक भुजा ऊपर को थी। चश्मा लगा हुआ था। जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती विराजमान थी। सत्य मानो साकार होकर बापूजी के रूप में बैठा था। सामने श्री बिनोबाजी थे। उनसे सटे हुए स्वर्गीय महादेवभाई बैठे थे। एक ओर को श्रीमती जमनालाल बजाज—श्रीमती जानकी बहन—बैठी थीं। सेवाग्राम के दो-चार अन्य सदस्य

भी थे। दरवाजे से आगे को भदन्त कौसल्यायन और मैं बैठे हुए थे। यह हमारा सौभाग्य था कि हम लोग वहाँ पहुँच गए। बापूजी ने जो बातें कहीं, वे अक्षरशः तो शायद ही किसी को याद हों; पर उनका सार अत्यन्त सूक्ष्म शब्दों में इस प्रकार है—"राजनीतिज्ञों के सामने मैं सकुचा जाता हूँ। पर अबकी बार तो मैं उनके सामने साफ बातें ही कह दूँगा। अहिंसा और सत्याग्रह यदि व्यक्ति के लिए ठीक हैं, तो वे जन-आन्दोलन के लिए भी ठीक हैं। हिमालय जाकर तपस्या करना मैं अपने लिए श्रेयस्कर नहीं समझता। मैं तो अबकी आमरण अनशन करूँगा और अनशन का रूप यह होगा कि केवल वायु-सेवन ही करूँगा, पानी भी नहीं लूँगा। ऐसा करने में चाहे यह शरीर एक दिन चले या दो दिन। लोग स्थिति की गम्भीरता को नहीं समझते। आज तो मेरे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। मैंने इसलिए आज (विनोवाजी की ओर संकेत करते हुए) तुम्हें बुलाया है, ताकि मुझे सलाह दे सको।"

स्मरण रहे कि उपर्युक्त सार में मूल बात की ओर ही संकेत है। बापूजी ने आध घण्टे से अधिक अपने मत के प्रतिपादन में लगाया था। अनशन की बात सुनकर स्वर्गीय श्री महादेवभाई देसाई की मनोव्यथा उनकी मुखाकृति पर अंकित थी। बेचैनी से उन्होंने बापूजी से कहा—"आप पहले अनशन क्यों करते हैं? मैं क्यों न पहले इस प्रकार का अनशन करूँ।"

उसी मुद्रा में बापूजी ने उत्तर दिया—"ऐसा तुम क्यों कहते हो? इसलिए कि मेरा मूल्य अधिक है! यदि जानकी बहन का मूल्य एक पैसा है, परचुरे शास्त्री का मूल्य चार पैसा है, तुम्हारा चार आने है और मेरा मूल्य तुम सोने की मुहर समझते हो, तो मैं देश की आजादी का मूल्य मुहर से अदा करूँगा, पैसों से नहीं।"

महादेव भाई बापू के इस तर्क से निरुत्तर हो गए और उनकी मानसिक वेदना उनके प्रत्येक रोम से प्रस्फुटित होने लगी, मानो उन्होंने बापूजी को वहीं चुनौती दे दी कि वे आजादी की खातिर बापू के सामने ही महाप्रयाण करेंगे। विनोबाजी से बापूजी ने कहा कि अगले दिन वे विचारकर उत्तर दें। पर विनोबाजी ने कहा—"मैंने आपके मत को जैसा समझा है, पहले उसे स्पष्ट कर

दूं और राय जैसी मैं समझता हूँ, दे दूंगा।" विनोबाजी ने बापूजी की बातों को थोड़े-से शब्दों में दुहरा कर पूछा—"क्या आपका मतलब यही है, जो मैंने कहा है ?" बापूजी के 'हाँ' कहने पर विनोबाजी ने अपनी राय प्रकट की कि वे बापूजी के फैसले से पूर्णतया सहमत हैं।

सब लोग कुटिया से एक ठण्डी साँस भरते हुए बाहर निकले। 'करो या मरो' की फिलासफी का निरूपण एक प्रकार से मेरे मत से सेवाग्राम की कुटिया में ही उस दिन हुआ था :

मैं यह कहता हूँ फनाको भी अताकर जिन्दगी ;
तू कमाले जिन्दगी कहता है मर जाने में है।

× × × ×

सूरत-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का अधिवेशन बहुत फीका रहा। कारण परमेष्ठीदासजी की तैयारी का अभाव न था। उन्होंने तो काफी तैयारी की थी; पर उस दिन सूरत में सरदार पटेल का भाषण था। गुजरात का दौरा करके अखिल-भारतवर्षीय अधिवेशन के पूर्व बम्बई को छोड़कर उनका अन्तिम भाषण सूरत में ही था। नदियाँ जिस प्रकार अपने वक्र मार्गों को पार करती हुई समुद्र में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार दर्शकों के पैर राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा की तरफ न होकर कांग्रेस के एक स्तम्भ सरदार पटेल के भाषण सुनने जा रहे थे। फलस्व रूप न मुझसे बोला गया और न भदन्तजी से। बस, सभापति के पद से विद्यार्थियों को पुरस्कार वितरण कर दिये गये। वैसे सभा की अन्य कार्यवाही बड़े ढंग से हो गई। संगीत और गरवा-नृत्य तो अनुपम थे।

सरदार पटेल का भाषण सुनने के लिए एक लाख से अधिक आदमी मौजूद थे। सरदार के भाषण सीधी चोट करते। उनका निशान कभी खाली नहीं जाता। गुजरात और बिहार में सरदार पटेल और श्रद्धेय डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इतने दौरे किये कि और सूबों में इतने नहीं हो सके। यू० पी० में कांग्रेस के बड़े-बड़े दिग्गज नेता हैं। पर क्या कोई बता सकता है कि उन दिनों यू० पी०

में डा० राजेन्द्र प्रसाद की तरह जिलों तक का दौरा किसी ने किया हो ? इसके मानी यह नहीं कि आन्दोलन में यू पी० पीछे रहा हो । पर यह बात भी सच है कि आन्दोलन से पहले पं० जवाहर लाल नेहरू, पन्त जी, आचार्य नरेन्द्र देव जी, किदवई साहब, कृपलानी जी और पालीवाल जी ने व्यवस्थित रूप से दौरे नहीं किये ।

८ अगस्त, १९४२ के उस महत्वपूर्ण अधिवेशन की प्रेस-गैलरी में हमें अपने एक चीनी पत्रकार से मालूम हुआ कि अधिवेशन की समाप्ति पर—भारत छोड़ो प्रस्ताव के बाद—देश में दमन का दौर—दौरा होगा । चाय के समय माननीय पन्त जी से अपनी मुलाकात हुई और उनसे कुछ बातचीत करने की लालसा हुई, तो उन्होंने ९ अगस्त को मिलने का समय दिया । आचार्य नरेन्द्र देव जी से उनके एक लेख का संक्षिप्त कराना था । उन्होंने भी ९ तारीख का समय दिया क्योंकि वे देशी राज्य सभा के सम्बन्ध में खण्डवा जाने वाले थे । शायद उस समय कांग्रेस हाई कमाण्ड को ९ तारीख को होने वाली घटनाओं का कोई आभास न हो ।

थोड़े-से शब्दों में सन् १९४२ के आन्दोलन के बड़े कैनवस के पूर्वपृष्ठ की थोड़ी सी रूप रेखा दे दी है । तबियत तो करती है कि और बातें भी लिखी जायँ । पर अपने इन संस्मरणों में मैंने वे ही बातें लिखी हैं, जिनका कि नक्शा अपने दिमाग में अब भी स्पष्ट बना हुआ है । यों तो सन् १९४२ के संस्मरण लिखने में बड़ी मनोरंजक बातें सामने आ जाती हैं । आखिर क्या किया जाय:

वह शोख भी माजूर है मजबूर हूँ मैं भी ;
कुछ फितने उठे हुस्न से कुछ हुस्ने नजर से ।

: ८ :

सूबेदार जुम्मनखाँ

७ दिसम्बर, सन् १९४२ को जब पुलिस वालों ने हम लोगों को गिरफ्तार किया, तब उन्होंने समझा कि नौकरशाही और ब्रिटिश सरकार गिरफ्तार करने वालों को ऊँचे दर्जे देगी और उन्हें पुरस्कृत भी करेगी; क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने और उसकी जड़ उखाड़ने वालों को उन्होंने गिरफ्तार ही नहीं किया, वरन् उनमें से कई एक को कस कर पीटा और अपमानित भी किया था। इसके अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पुलिस अफसरों ने खुल्लमखुल्ला कहा था कि इन पंक्तियों के लेखक को तो फाँसी होगी और शेष अभियुक्तों को सात वर्ष से लगाकर बीस वर्ष तक की कड़ी कैद। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिकारियों ने हमें हवालाती कैदी (Under-trial prisoners) नहीं बनाया बल्कि नजरबन्दी कैदी (Security prisoner) बनाकर आगरा सेण्ट्रल जेल भेज दिया। विशेष अदालतों (Special Courts) का जमाना था। सोचा था कि शीघ्र ही फैसला हो जायगा और अधिकारियों की अभिलाषा पूरी हो जायगी। पर अधिकारियों के मन तो आवश्यकता से अधिक गन्दे थे। शनाख्त के समय कोर्ट-इन्सपेक्टर से पता चला कि आगरा षड्यन्त्र केस अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र-केस होगा, जिसमें मध्यप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, बिहार और यू० पी० के पचपन व्यक्तियों पर मुकदमा चलेगा और उसमें सर्वश्री रफीअहमद किदवई, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, जगनप्रसाद रावत, शम्भूनाथ चतुर्वेदी, आचार्य जुगलकिशोर, राधेश्याम शर्मा, गोपीनाथसिंह, डाक्टर केसकर, निरंजनसिंह इत्यादि अभियुक्त होंगे।

इतने आदमियों के साथ रहने में जो आनन्द रहेगा, उसकी कल्पना-मात्र से ही सबको बड़ी प्रसन्नता थी। अधिकारियों ने बड़ा लम्बा-चौड़ा जाल

बिछाया था । उनकी दशा उन उन्मत्त लोगों की-सी थी, जो अपनी सत्ता के नशे में बौखला जाते हैं । जितना अधिक उन्होंने ऊधम किया, उतना ही अधिक हमको आशाकिरण-आलोक का आभास होने लगा । हमें युद्ध-हवालाती कैदी इसलिए नहीं बनाया, ताकि हम अपने मुकदमें की पैरवी के लिए अपने मित्रों और घर वालों से न मिल सकें । हमारे ऊपर दफा २६ भी लगी हुई थी और हम हवालाती कैदी भी थे । जोरो-जुल्म, वेहूदगी और नीचता करने में अगुआ थे—खुफिया पुलिस के डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर चक्रवर्ती और खुफिया का इन्सपेक्टर (आजकल देहरादून स्थित सर्किल-इन्सपेक्टर) रामप्रसाद । लगभग एक वर्ष तक तो पुलिस वाले मुहलत ही लेते रहे और इस बीच स्पेशल अदालतें खत्म कर दी गईं । पहली मात तो पुलिस ने यही खाई । सुना था कि अन्त-र्प्रान्तीय षड्यन्त्र केस के लिए लगभग बीस लाख रुपये की माँग की गई थी । मुकदमा चलाना था पचपन आदमियों पर; पर बाद में बड़े नामी वकीलों के परामर्श से केवल चौदह व्यक्तियों पर ही मुकदमा चलाया गया ।

सेण्ट्रल जेल आगरे के अन्दर ही मजिस्ट्रेट की अदालत लगती थी । सबसे दुःख की बात यह थी कि कुटुम्बी लोगों को अदालत में आने की आज्ञा तो थी; पर हम लोग किसी से बात नहीं कर सकते थे । अधिकारियों की ओर से इस बात की कड़ी ताकीद थी कि अभियुक्त घर वालों से बोल न पाएँ । अभियुक्तों के कुटुम्बी जनों के लिए एक ओर स्थान रक्षित था । वे वहीं बैठते थे । जेल के बार्डर और पुलिस के लोग कड़ी नजर रखते थे कि कहीं कोई अभियुक्त घर वालों से बात न कर ले । अभियुक्त और उनके कुटुम्बी निकट होते हुए भी दूर थे । बच्चे बिलखते रहते, हम लोगों के पास आने के लिए; पर कोर्ट-इन्सपेक्टर जमुनाप्रसाद और और खुफिया इन्सपेक्टर रामप्रसाद इस बात में मजा लेते कि हम लोग बच्चों को दुलार-भरे हाथों से गोदी में न ले सकें । पर स्थान की दूरी से दिल की दूरी थोड़े ही हो सकती थी । निकट तो हमारे पुलिस के नरपशु थे; पर दिलो-दिमाग से वे हमसे हजारों कोस दूर थे ।

मजिस्ट्रेट के यहाँ से चौदह आदमियों में से तेरह आदमी सैशन सुपुर्द कर दिये गए। इस बात के लिए, हमने सुना था कि प्रयत्न किया गया था कि सैशन का मुकदमा भी जेल ही में हो, पर न जाने क्यों अन्त में यही तय पाया कि हमें जेल से बाहर सैशन अदालत जाना पड़ेगा, तब हमारी खुशी का ठिकाना न रहा। जेल की चहारदीवारियों से तबीयत ऊब गई थी। चारों तरफ नहूसत दिखाई पड़ती थी। वही बैरकें, वही जंगले, वही पेड़ और वही एकरस जीवन और रात में उन्हीं में बन्द होना। मुक्ताकाश देखने के लिए तड़पते थे। जेल के फाटक से बाहर हथकड़ियाँ पहने पुलिस के पहरे में दुनिया के आदमी देखने को मिलेंगे, सड़क पर नए आदमी दिखाई पड़ेंगे, कुछ चहल-पहल होगी, अर्थात् एक प्रकार से जीवन में कुछ सरसता आयेगी-- ऐसे विचारों से हम कथित भयंकर विद्रोही और आतंकवादी बड़े ही प्रसन्न थे।

जेल के फाटक पर हमें थोड़ी-बहुत परेशानी जेलर उम्मेदहसन की धूर्तता-से होती थी। उसने स्पष्ट रूप से कहा भी था कि उसकी पूरी सहानुभूति पुलिस के साथ है। हम लोग उससे कोई रियायत नहीं चाहते थे। हममें से एक साहब थे, जिनकी वह 'तिकड़म' किया करता था। इसका भी हम बुरा नहीं मानते थे। हमें तो उसके अन्याय से ही चिढ़ थी।

हथकड़ियाँ पहनकर जब हम लोग फाटक से बाहर होते, तब सशस्त्र पुलिस दोनों ओर खड़ी हो जाती और हम लोग पेट्रोलकार में जा बैठते। अदालत ले जाने वाला पुलिस का दस्ता एक अफसर के अधीन रहता। सशस्त्र पुलिस के आदमी प्रायः दो-तीन ही रहते। अफसरों में से एक सूबेदार थे, नाम था जुम्मनखाँ।

जुम्मनखाँ के प्रति हम लोगों का आकर्षण स्वाभाविक था, क्योंकि उनके साथ दो बच्चे भी आया करते थे। बच्चों की उमर क्रम से आठ-दस वर्ष की होगी। सम्भव है, वे और भी छोटे हों। जेल की चहारदीवारियों में बच्चों की बड़ी याद आती है। इसलिए जब हम दो बच्चों को पेट्रोल-कार में आगे बैठे देखते, तब इन पंक्तियों के लेखक को अपने बच्चों की याद आ जाती। कितनी भोली और सरल मुखाकृति थी उनकी! बच्चों के चेहरों पर कुछ सूनापन दिखाई देता था। पेट्रोल-कार के भीतर इन पंक्तियों का लेखक, ड्राइवर की

सीट से सटकर बैठा करता। एक दिन बच्चों को देखकर न जाने क्यों दिल भर आया और सूबेदार जुम्मनखाँ से पूछ बैठा—"आप इन छोटे बच्चों को इस तेज लू में अपने साथ क्यों लाते हैं ?"

"मेरे ऊपर खुदा का क़हर नाज़िल हुआ, पण्डितजी।" जुम्मनखाँ ने ठण्डी साँस खींचकर कहा और बच्चों की ओर संकेत करके बोला—'इनकी माँ का इन्तक़ाल हो गया है। अब इनके लिए मैं ही माँ, और बाप हूँ। यदि दूसरी शादी करता हूँ तो नई बीबी इनकी जिन्दगी खराब कर देगी। पुलिस लाइन में किसके पास इन्हें छोड़ें। इसलिए ये मेरे साथ ही रहते हैं।"

जुम्मनखाँ की बातों से एक धक्का-सा लगा और दिल ने झुककर सहानुभूति के दो फूल— अश्रुकण दिवंगत आत्मा के प्रति चढ़ा दिए। पेट्रोल-कार रास्ते को नापती हुई सैशन अदालत की ओर बढ़ी। उस दिन इन पंक्तियों के लेखक से नारे नहीं लगाये गये। अदालत में पहुँचने पर हम लोगों को दर्शकों और घर वालों से बातें करने की सुविधा थी। पुलिस ने बहुत चाहा कि हमें खाना वगैरह न दिया जाया करे। कारण यह था कि मि० चक्रवर्ती और रामप्रसाद ने जीवन-भर इख़लाकी कैदियों के ही मुकदमे चलाये थे। शायद पहली बार ही इतना बड़ा राजनीतिक और संगीन मुकदमा उनके पल्ले पड़ा था। उनकी दिमागी हालत तेली के बैल के समान थी। अस्तु, सैशन अदालत में हम लोगों को घर वाले और मित्र खाना देते। हम लोग भी जुम्मनखाँ के बच्चों को बिना खिलाए कुछ नहीं खाते। मातृहीन बच्चों को देखकर हमें बड़ी तकलीफ होती। जुम्मनखाँ से और अन्य पुलिस वालों से हमने कह दिया था कि यदि बच्चे खाना नहीं खायेंगे तो हमसे भी खाना नहीं खाया जायगा। बदले में हमें कुछ रियायत नहीं चाहिए थी। हम तो नियमों का पालन करते थे। इन्सपेक्टर रामप्रसाद और कोर्ट इन्सपेक्टर की आँखें उनके दिल के द्वेष को प्रकट करतीं और यदि उनका वश चलता, तो वे न जाने क्या करते। वैसे अपनी करनी में तो वे चूके न थे।

अदालत से जेल जाते समय और जेल से अदालत आते समय हम केवल तीन नारे लगाते और वे नारे थे—'भारत माता की जय,' 'महात्मा-गान्धी की जय' और 'इन्क़लाब जिन्दाबाद।' इन नारों को सुनकर इन्सपेक्टर

रामप्रसाद और जमुनाप्रसाद कुढ़ ही नहीं जाते, बल्कि ऐसा प्रतीत होता मानो उनकी सम्पत्ति छिनी जा रही है।

एक दिन हम लोग डौक में खड़े बातें कर रहे थे; लंच का समय था। जज साहब लंच को गए हुए थे कि एक आदमी ने आकर पूछा—"आपका नाम क्या है?"

"आप नाम क्यों पूछते हैं? आप कौन हैं?"

"मैं हरीपर्वत थाने का दरोगा हूँ और एक तहकीकात करने आया हूँ।"

"हम लोग अदालत के अधीन हैं। आप बिना अदालत की आज्ञा के कोई तहकीकात नहीं कर सकते।"

"मैंने तो जज साहब से पहले ही इजाजत ले ली है।" दरोगा साहब ने कहा।

"अच्छी बात है। आप क्या तहकीकात करना चाहते हैं पूछिए। मेरा नाम है श्रीराम शर्मा।"

"जेल से अदालत और अदालत से जेल जाते समय आप नारे लगाते हैं?"

"जी हाँ।"

"आप कौन-से नारे लगाते हैं?"

"हम केवल तीन नारे लगाते हैं, और वे हैं—महात्मा गान्धी की जय, इन्क़लाब जिन्दाबाद और भारत माता की जय।"

" 'अंग्रेजी सल्तनत का नाश हो' और 'फौज में भरती होना पाप है' ये नारे आप नहीं लगाते?"

"हम चाहते तो यही हैं; पर ये नारे हम नहीं लगाते और न लगाने का कारण यह है कि इन नारों के लगाने से आप केवल भारत-रक्षा-कानून की दफा ३८ में ही मुक़दमा चला सकेंगे। जो मुकदमा चल रहा है, उसमें ही फाँसी हो सकती है। तो फिर दफा ३८ के कोई मानी नहीं हैं। और इस तरह की छेड़खानी करने से कोई फायदा नहीं है।"

अन्य साथियों से भी पूछ-ताछ करके दरोगा चला गया। सैशन अदालत से हम लोग सभी दफाओं से बरी कर दिए गए। हममें से केवल एक को—इन पंक्तियों के लेखक के बड़े भाई को—एक गैर कानूनी नम्र परचा रखने के जुर्म में, ३ महीने की कड़ी सजा हुई।

हमारी रिहाई से तत्कालीन सरकार, खुफिया विभाग का स्पेशल विभाग, डिस्ट्रिक्ट और खुफिया पुलिस के अन्य लोग इतने बौखलाए कि हमको आतंकवादी क्रान्तिकारी करार देकर फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल भेजने का हुक्म हुआ। २ सितम्बर, १९४४ को जब हम लोग सेण्ट्रल जेल के बारह ताले को छोड़ जेल के फाटक पर आए, तो देखते हैं कि सूबेदार जुम्मनखाँ सशस्त्र पुलिस के साथ खड़े हैं। देखते ही वे आश्चर्य से बोले "वल्लाह पण्डितजी, आप हैं? शुक्र है खुदा का कि आप लोग रिहा हो गए। आपको अदालत ले जाने में मुझे बड़ी शर्म लगती थी। आप लोगों की रिहाई की खबर सुनकर बड़ी खुशी हुई। तोबा, तोबा! सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब मि० वुडने मुझे कितना डराया कि आप लोग सूबे के खास खतरनाक आदमियों में से हैं। पुलिस गारद पर हमला कर सकते हैं। रास्ते में से भाग सकते हैं। इसलिए मुझे हुक्म मिला है कि आप लोगों को लाकर पुलिस-लाइन में रख दिया जाय और लोगों को यह न बताया जाय कि आप लोग किस स्टेशन से बैठेंगे और गाड़ी आने में सिर्फ ५ मिनट रहें, तभी आपको स्टेशन पर ले जाया जाय। स्टेशन तक तो कोई बात नहीं, पर आप यकीन रखें कि मैं आपको बड़ी सहूलियत के साथ ले चलूँगा। कोई तकलीफ आपको नहीं होगी। बस, मैं एक बात चाहता हूँ कि कोई साहब रास्ते में किसी को कोई चिट्ठी न डालें।"

लाइन इन्सपेक्टर ने अपनी कोठी से सिगनल दिया और हम लोग ईदगाह स्टेशन लाए गए। इण्टर क्लास का डब्बा हमारे लिए पहले ही रिजर्व था। मजे से बैठे। ऐसा मालूम होता था मानो एक नई दुनिया में आ गये हैं। रास्तेमें सूबेदार जुम्मनखाँसे बातें हुई। बड़े कौतूहल से जुम्मन खाँने पूछा--"सैशन अदालतमें क्या कोई आपसे तहकीकात करने गया था कि आप क्या नारे लगाते हैं?"

जब जम्मनखाँको सब बातोंसे अवगत करा दिया, तब इन पंक्तियोंके लेखकने उनसे पूछा—"आखिर यह सवाल आपने क्यों किया? क्या इसमें कोई रहस्य है!"

जुम्मनखाँ – "कुछ न पूछिये पण्डितजी। आप लोगों की मदद खुदा ने की है, वर्ना रामप्रसाद और जमनाप्रसाद तो अपनी करनी से चूके नहीं।"

"यह तो ठीक है, पर आपका मतलब क्या है?"

जुम्मनखाँ—"बात असल में यह है कि इन लोगों ने मुझे भी बहुत परेशान किया।"

"आपको कैसे परेशान किया ?"

जुम्मनखाँ—"रामप्रसाद और जमुनाप्रसाद ने यह कोशिश की है कि आप लोगों पर दफा ३८ और चलाई जाय, ताकि किसी-न-किसी तरह आप लोगों को फँसाया जाय। यदि संगीन मामलों में न सही, तो दफा ३८ में ही कई वर्षों की सजा हो जाय। इन लोगों ने एक मुकदमा गढ़ना चाहा। मौके के फर्जी गवाह भी तैयार कर लिए थे। बुलाकर मुझसे कहा गया कि मैं लिखकर रिपोर्ट कर दूँ कि आप लोग 'अंग्रेजी सल्तनत का नाश हो' और 'फौज में भर्ती होना पाप है'—नारे लगाते हैं। फिर किसी दिन रास्ते में पेट्रोल-कार को रोककर आप लोगों पर हमला किया जाय। कोई भी नारा आप लोग लगायें तो खूब पीटा जाय! किर्चें भी स्तेमाल की जायँ, और गोली भी चलाना पड़े, तो कोई हर्ज नहीं; सब भुगत लिया जायगा। मैंने उनसे कह दिया कि मेरे ऊपर खुदा का कहर है। अभी बीवी फौत हुई है। बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। मुलजिमान भले घर के आदमी हैं। और बाल-बच्चेदार हैं। वे ये नारे नहीं लगाते। मुझसे यह गुनाह नहीं होगा। मुझ से यहाँ तक कहा गया कि वुड साहब की भी इसमें रजामन्दी है। मैंने कहा कि मुझे लिखकर यह हुक्म दे दिया जाय कि मैं ऐसी रिपोर्ट कर दूँ, तो मैं ऐसी रिपोर्ट कर दूँगा और खुदा के सामने गुनहगार नहीं ठहराया जाऊँगा। पर बिना लिखे हुक्म के पाये, मैं ऐसा हर्गिज न करूँगा चाहे मेरी नौकरी चली जाय। मेरे ऊपर रामप्रसाद और जमनाप्रसाद बहुत नाराज हुए। उन्होंने धमकी दी कि वे मुझे देख लेंगे। मेरे इस प्रकार मना करने पर भी मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने तहकीकात तो करा ही ली। पर मेरी गवाही के बिना वह मुकदमा कारगर न होता इसलिए वे चुप पड़ गये।"

जुम्मनखाँ की बात सुनकर इन पंक्तियों का लेखक दंग रह गया। रास्तेभर हम लोग बड़े आराम से गये। फतेहगढ़ स्टेशन पर हम लोग सुबह उतरे। लगभग दो वर्ष के बाद श्री पीताम्बर पन्त और इन पंक्तियों का लेखक एक मील टहलते हुए शौच के लिए गये। हमारे साथ कोई पुलिस का आदमी नहीं था। पर हम मनुष्यत्त्व और नैतिक बन्धन में बँधे हुए थे। कांग्रेस की प्रतिष्ठा

और उसके प्रति जुम्मनखाँ की श्रद्धा हजार पुलिस वालों से ज्यादा प्रतिबन्ध के रूप में थी ।

हम लोग पैदल ही फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल तक गये । जेलवालों को चालान देकर जब जुम्मनखाँ चलने लगे तब हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा, "माफ कीजियेगा पण्डितजी, अगर हम लोगों की ओर से आप लोगों को कोई तकलीफ हुई हो ।"

इन पंक्तियों के लेखक ने जुम्मनखाँ के दोनों बच्चों के लिए प्यार भेजा। पता नहीं जुम्मनखाँ की तैनाती आजकल कहाँ है। एक बार जुम्मनखाँ को उनके दो बच्चों सहित चाय के लिए बुलाना है । यू० पी० में कांग्रेस सरकार है और तिकड़मी पुलिस वालों की जो धमा-चौकड़ी मची हुई है उसमें सूबेदार जुम्मनखाँ जैसे शरीफ आदमियों की शायद पूछ न हो । तबीयत करती है कि कभी जुम्मनखाँ की चर्चा यू० पी० के गृह-मंत्री श्री रफी अहमद किदवई साहब से की जाय।

: ६ :

रामकली

पुराणों में जहाँ नरकों का वर्णन आता है, वहाँ कुम्भी पाक और रौरव नरकों को बहुत बुरा कहा गया है। रौरव तो घोरतम नरक है और उससे कुछ घटकर कुम्भीपाक है। मनुष्य स्वर्ग और नरक अपने विचारों, व्यवहार और दूषित परिस्थितियों से अपने चारों ओर बना लेता है। विचारों के ताने-बाने से वह एक ऐसा जाल तैयार करता है कि उसके सान्निध्य से ही अपरिचित और तटस्थ आदमियों को तकलीफ होती है। उनका दम-सा घुटने लगता है और उनका जीवन दुखी और क्लेशपूर्ण हो जाता है।

यू० पी० का फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल सन् १९४२ के नारकीय जेलों में से था। पंजाब के जेलों की कड़ाई की बात सुनी है; पर वहाँ अपेक्षाकृत खाने-पीने की कोई तकलीफ न थी। बरेली जेल के जोरोसितम भी कम नहीं थे। जेल वालों ने वहाँ पर देश के प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित व्यक्ति का अपमान किया। पर वहाँ राजनीतिक बन्दियों में सौहार्द्र था। विरोधियों के मुकाबले में उनका संगठन था। भोजन-सामग्री और अन्य खाने की व्यवस्था वहाँ अपेक्षाकृत अच्छी थी। लेकिन फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल के राजबन्दियों की दशाका चित्रण यदि किया जाय और वहाँ की बातें सीधे-सादे ढंग से भी लिखी जायँ, तो उन पर कोई विश्वास नहीं करेगा। जो फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल में सन् १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले में नहीं रहा, वह वहाँ की स्थिति और वहाँ के वातावरण का अनुमान नहीं लगा सकता। एक मूल कारण उस परिस्थिति का यह था कि भारतवर्ष के जितने भी सच्चे और बनावटी दल हैं, उनका वहाँ प्रतिनिधित्व था उदाहरण के लिए, एक दल के वहाँ एक ही महाशय थे—फोर्थ इण्टरनेशनलिस्ट और जब कोई समस्या सुलझाने के लिए वहाँ मीटिंग होती थी तब अपने दल का प्रतिनिधित्व वे करते थे। जेल वालों ने इस पारस्परिक फूट और

दलबन्दी का लाभ उठाया। क्रान्तिकारियों के कैम्प में तबेले की सी दुलत्तियाँ चला करती थीं। इस वातावरण का मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि बहुत से लोगों ने १०-१० और १५-१५ वर्ष जेल में बिताये थे और वे अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे थे। एक दूसरी बात यह थी कि अपने दल की संख्या बढ़ाने के लिए अधिकांश दलों के लागू दलाल जुटे रहते थे। खाने-पीने की सुविधा, शब्दाडम्बर और नीचतम बुराई की बातें करके नये और सीधे व्यक्तियों को फुसलाकर दल-विशेष में लाया जाता था। जिसकी संख्या अधिक होती, वही दल कैम्प की शक्ति में बलशाली मनवाया जाता। कुछ लोगों ने तो यह समझ लिया था कि जेल की ऊधमबाजी से ही वे देश की शासन-बागडोर अपने हाथों में ले लेंगे। अखाड़े भी दलबन्दी के दलदल में दब गए थे। मांस खाने का प्रचार, सिगरेट पीने का प्रचार और अशिष्टता-अहेरी की आराधना सी होती थी। गांधीजी और नेहरू जी को एक दल तो तू-तड़ाक से सम्बोधन करता था और फौश गालियाँ देता था। एक बार वहाँ पर ईंटों, घूँसों और गालियों के प्रहार से समाजवादी दल और क्रांतिकारी समाजवादी दल (R. P. S.) में जो जंग हुई थी, उसकी चर्चा जहाँ गर्हित है, वहाँ बुनियादी समस्याओं को ठीक ढंग से समझने के लिए एक साधन भी है। पेशेवर डकैतों को अपने दल में भर्ती करने की सरगर्मी, कई क्रान्तिकारियों द्वारा तिकड़म से चीजों को मँगाकर बाकायदा दुकानदारी चलाना, कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार और अन्य ऐसी ही लजास्पद बातों में जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

मेरा अपना जुदा मामला है;
और के लेन-देन से क्या काम।

हाँ, फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल के एकाकीपन, नहूसत और दिमागी परेशानी को दूर करने के साधनों और अपने एक सफल प्रयोग पर कुछ लिखने को तबीयत करती है और अगर वे साधन और प्रयोग न होते, तो फिर 'गालिब' के स्वर में स्वर मिलाकर यही कहना पड़ता—

हस्ती का ऐतबार भी गम ने मिटा दिया:
किससे कहूँ कि दागे जिगर का निशान है।

पर तोतों के पालने, बिल्लियों और उनके बच्चों की देखभाल, फूलों की तैयारी की तल्लीनता और पुष्पमण्डित वाटिकाओं ने अधिकांश राजबन्दियों

को शान्ति और स्फूर्ति दी और उन्हें समझाया कि जीवन-संघर्ष में भलों और बुरों का साथ होता ही है। खल को श्वान की भाँति छोड़ना पड़ता है और फिर—

गुलिस्ताने जहाँ में, फूल भी हैं और काँटे भी;
मगर जो गुल के जोया हैं, उन्हें क्या खार का खटका।

चर्खे की चर्चा और कताई के महत्व पर मैं लिख चुका हूँ। आज फतहगढ़ जेल की एक ऐसी संगिन का जिक्र करना है, जिससे वात्सल्य और सद्भावना का उद्रेक होता था और जो जेल की दुनिया और बाहर की दुनिया में संयोजक थी। अनेक राजबन्दियों ने तोते और मैना पाल रखे थे। पर कैदी की हैसियत से मुक्ताकाश-बिहारी पक्षी को कैद करना मुझे पसन्द नहीं था। जिस बात की हमें स्वयं शिकायत हो, उसी बात को हम करें—यह बात कुछ अच्छी नहीं थी। पर हृदय की शून्यता आदमी के लिए विघातक है। अपने स्नेह को उँड़ेलने के लिए कोई पात्र चाहिए। भावनाओं के प्रदर्शन के लिए कुछ साधन और साध्य होना आवश्यक है। इसीलिए राजबन्दी पक्षियों को पालते थे। मेरी तबीयत चिड़ियों के फँसाने की कभी नहीं थी। उनसे निकटतम सम्बन्ध—अपनापन—स्थापित करने की अवश्य रही है। जेल-जीवन में भी ऐसा किया। आगरा जेल में एक पण्डुक का जोड़ा पाला था पिंजड़े में कैद नहीं किया गया था। फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल में एक गलगल पाली थी और उसका नाम रखा था रामकली।

छोटी गलगल मैना के वंश की है और बड़ी मैना की अपेक्षा जल्दी हिल जाती है। स्टेशनों और खेतों में झुण्ड के झुण्ड कीड़ों और उच्छिष्ट भोजन के टुकड़ों या कणों की तलाश में उड़-फिरकर घूमती हैं। फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल की रसोईघरवाली बैरकके आसपास तो सर्व भक्षी कौओं और छोटी गलगलों के झुण्ड आते थे। जिस स्थान पर राशन बँटता, वहाँ पर तो गलगलें आतुर बनी कातर दृष्टि से मँडराया करतीं। रोटीका टुकड़ा या रँधे चावल मिल जाते, तो उन्हें वे गपक लेतीं। मक्खन पर तो वे मुग्ध थीं। मक्खन कहीं जरा-सा भी मिलता' तो वे उसे बड़े स्वाद से सटकतीं। यदि कहीं मक्खन का परिमाण कुछ अधिक हुआ, जिसे कोई गलगल एकदम न निगल पाती, तो उसे हथियाने के लिए और गलगलें उसकी ओर

बढ़तीं और दुष्ट कौआ अवसर पाते ही उधर झपट्टा मारता। कौए से बचने के लिए गलगलें बैरक में उड़ जातीं, तो कौए से अवश्य बच जातीं। कभी-कभी बैरक में गलगलें बिल्लियों का शिकार बनतीं। रसोईघरों के अतिरिक्त वे बैरकों और बैरकों से लगे खेलने या बैठने के मैदान में रोटी की तलाश में आतीं। बैरकों में खाने की खोज होती। पालतू न्यौलों को देखकर वे कैं-कैं करके खतरे का सिगनल देतीं और रोशनदानों या जँगलों पर बैठकर स्थितिका अवलोकन करतीं और आवश्यकतानुसार बैरक से बाहर दूर उड़ जातीं। बैरकों और रसोईघरों में आने का उनका समय नियत-सा था। विभिन्न ऋतुओं में वे विभिन्न समय पर आतीं।

पाँच नम्बर बैरक के पीछे वाले मैदान में अपना अड्डा रहता चर्खा कातने और बैठने का। बैरक में तो मैं रात को बन्द होने पर और दिन में थोड़ी देर के लिए जाता। कम्बल बिछाये बाहर ही डटा रहता---गर्मियों की दुपहरी को छोड़कर। खाने की खोज में वहाँ भी कभी-कभी गलगले में आतीं। सोचा, क्यों न उनको लपकाया जाय और हिलाया जाय। मक्खन पर तो वे जान देती थीं। मक्खन का डब्बा चर्खे के पास रख लिया और जैसे ही तीन-चार गलगलें कीड़े-मकोड़े या अन्य खाने की चीजों की खोज में निकलीं कि मैंने मक्खन की एक गोली उनकी ओर फेंकी। बस, फिर क्या था। टोली की टोली में धमा-चौकड़ी-सी मच गई। एक गलगल ने वह मक्खन धर पाया और फिर उससे छीनने के लिए उसकी साथिन गलगलें पिल पड़ीं। मक्खन लेने वाली गलगल रामकली उड़कर पास के आम के पेड़ पर जा बैठी। फिर उसने मक्खन सटकने का प्रयास किया; पर अन्य गलगलें उसके पीछे लगी थीं। शाखों और पत्तों में उड़कर उसने बचने की कोशिश की; पर उसकी पिछाई नहीं छोड़ी गयी। अवसर पाते ही रामकली मक्खन गटक गई और फिर एकदम नीचे उड़ आई ओर चर्खे से कोई दो गज की दूरी पर आ बैठी और अपनी भाषा में कच-कच और खिच-खिच करने लगी, मानो कहती थी— देखता क्या है। तेरे द्वार पर मँगते खड़े हैं। भिक्षा दो। माँग-सी काढ़े और सिर झुका कर वह माँग रही थी। उसकी साथिनें भी याचना की मुद्रा में खड़ी थीं। उनकी भावभंगी इस बात की द्योतक थी कि उन्हें इस बात की शिकायत थी कि मक्खन उन्हें क्यों नहीं दिया गया। उन्हें कौन समझाय कि

मैंने तो यों ही मक्खन की गोली फेंक दी थी। निकटतम बैठने वाली गलगल ने उसे उठा लिया और मैंने उसका नामकरण कर दिया। मक्खन औरों को भी डाला गया। छीना-झपटी में सब की पैंतरेबाजी बड़ी भली मालूम होती थी। करीब के नीम पर बैठें कौओं ने मक्खन-वितरण क्रिया को देखा, तो फौरन उस ओर को वे लपक आये। गलगलें जितनी सरल और सच्ची होती है, उतना कौआ तो होता नहीं। कौए की धूर्तता प्रसिद्ध है। हंस और कौए की कथा को सभी जानते हैं कि सोते हुए यात्री के ऊपर हंस ने अपने डैने फैलाकर ऊपर पेड़ से छाया करके यात्री को आराम पहुँचाने की चेष्टा की और कौए ने यात्री के मुँह में बीट कर दी। यात्री ने जागकर देखा कि हंस ठीक उसके मुँह पर पंख फैलाए बैठा है। यात्री ने आवेश में आकर तीर से हंस को मार दिया। फतहगढ़ जेल में एक बार एक राजबन्दी दोनों हाथों में रखे चाय के गिलास लिए जाते थे कि एक कौआ उड़ता आया और उड़ते में ही गिलासों में बीट कर दी। कौए के स्वभाव और उसकी चालाकी से मैं परिचित हूँ। इसलिए कौओं को भगाने के लिए कंकड़ियाँ इकट्ठी करके रख लीं। जब कभी वे गलगलों की ओर बढ़ते,, मैं ताककर उन पर कंकड़ियाँ मारता। फलस्वरूप गलगलें समझ गयीं कि उनकी माँग पर मक्खन मिलता है और कौओं की धृष्टता और इच्छा के लिए पत्थर बरसाए जाते हैं उनपर। चार-पाँच मिनटों के सत्संग से हम एक दूसरे को समझ गए। पाठक कह सकते हैं। कि 'खग समझे खग ही की भाषा'; पर तुलसी दास के ही शब्दों में मैं कहता हूँ कि 'हित अनहित पसु पक्षिहु जाना।' सौजन्य और स्नेह की सीमा नहीं है। पागल, स्वभाव से क्रूर और पिशाचोंकी बात दूसरी है।

उन दिन के बाद से रामकली अपनी सहेलियों और कुटुम्ब के साथ प्रतिदिन आती। मेरे मक्खन की हिस्सेदार वह अकेली ही नहीं बनी थी, वरन् उसके साथी-संगी भी हिस्सेदार बन गए थे। मक्खन खिलाने में मैं बड़ी आत्मीयता अनुभव करता। एक ऐसा प्राणी तो था जेल में, जो स्नेह और सहानुभूति का सन्देश लेकर बिहार करता हुआ जेल से बाहर की दुनिया को ले जाता था। गलगल की भाषा तो मैं नहीं समझता था; पर उनकी बोली से—उनके भिन्न-भिन्न स्वरों से—उनके उल्लास, आंतक और चिन्ता को तो मैं समझता ही था; दिल की भाषा स्वरों में नहीं बाँधी जाती। वेदना और क्लेश के रेकार्ड

नहीं भरे जाते। हमारा पारस्पिक स्नेह और आत्मीयता बढ़ी और रामकली कुछ ही दिनों में यह समझने लगी कि उसका मेरे ऊपर पूरा अधिकार है। सुबह होते ही वह मेरे बैठने की जगह पर आ जाती। मेरी अनुपस्थिति में वह वहीं बैठकर अपने पंख फुलाती और सिर नीचा करके झटके दे-देकर किच-किच-किच-किच्च का स्वर अलापती। परमात्मा ने गलगल के सिर पर विशेष प्रकार के बाल दिये हैं और ऐसा मालूम होता था, मानो रामकली माँग काढ़कर और श्रृंगार करके आई हो। पर श्रृंगर देखने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ होती हैं। माता, बेटी और बहन के श्रृंगार देखने की दृष्टि में सात्त्विकी वृत्ति होती है। मादकता और कामुकता वहाँ होती ही नहीं। रामकली का रूप मेरे लिए एक दिव्य रूप था। जैसे ही मैं चर्खा और मक्खन का डब्बा लेकर अपने स्थान की ओर बढ़ता, रामकली अपनी सहेलियों के साथ मेरे स्वागत को बढ़ती। बैठकर चर्खा ख़ोलना मुश्किल हो जाता। चारों ओर शोरगुल मचातीं और मक्खन पाकर ही चैन लेतीं। कई सप्ताह तक यह प्रयोग चला और तब मैंने टहल कर मक्खन खिलाना आरम्भ किया। मैं आगे-आगे बढ़ता और वे सब तीतर की भाँति पीछे पीछे चलतीं और आवाजें करती चलतीं मक्खन के लिए। बैरक में जाकर रामकली ने यह भी मालूम कर लिया कि मेरा ढूला (seat) कौन सा है। दोपहरी में आराम करने के लिए वह मेरे ढूले के ऊपर दीवार से सटी पौनियों की पोटली पर आकर बैठ जाती और घण्टों वहीं बैठी-बैठी गाया करती। गीत की स्वर-लहरी तो समझ में नहीं आती थी; पर उसका गाना उल्लास और आनन्द का द्योतक था। वहाँ बैठी-बैठी वह चैन की बंशी बजाती और मैं पड़ा-पड़ा अपने बाल-बच्चों से समन्वित हो जाता। बस, परेशानी यह हो जाती कि वह बीट इतनी करती कि ढूले पर बिछी साफ चद्दरों पर बीट के धब्बे पड़ जाते। बीट दिन में दसों बार उठाकर फेंकनी पड़ती।

होते-होते रामकली से इतना अपनापन कायम हो गया कि मेरी सीटी को वह पहचान गई। वह उड़ी चली जा रही है और मेरी सीटी के सुनते ही वह फौरन लौट पड़ती और नीचे आ बैठती। उसके प्रति अपने प्रेम-प्रयोग में मैं आगे बढ़ा। मक्खन के डब्बे को उसे दिखाता और मक्खन नीचे नहीं डालता। उँगली पर ही मक्खन लगा रहने देता। रामकली उड़कर हाथ पर बैठ जाती

और चोंच मारती। मक्खन निकाल कर मैं उँगली पर लगा लेता और वह मजे में उसे खा लेती। धीरे-धीरे वह इतनी अभय और ढीठ हो गयी कि यदि मैं उसे मक्खन नहीं देता, तो चर्खे में चोंच की ठोंकें मारती। चर्खे के मोढ़िए पर बैठकर अपना अलाप प्रारम्भ करती—अन्य साथी कातनेवालों के चर्खों की ओर घूम आती। अपना तो वह मेरे ऊपर पूरा अधिकार समझती थी। सिर पर बैठना, कन्धे पर बैठना, चर्खे के मोढ़िए पर और चर्खे के सामने बैठकर अपना तराना अलापना यह सब कुछ वह करती। पर मेरा अनुमान यह था कि उसे यह असह्य था कि कोई उसे छुए। एक दिन एक साथी ने अपनी मूर्खता से उसे पकड़ लिया। उफ़ ! किस वेदनापूर्ण स्वर में वह चीखी, मानो किसी दुष्टात्माने किसी कुलवधू को अपमानित करने का प्रयास किया हो। वह चीखी और चिल्लाई। फौरन ही तो उसे छुड़ाया। छूटते ही तेज गति से वह उड़ गई और दो दिनों तक वहाँ आई ही नहीं। वहुत दिनों बाद उसे पता चला कि आदमी मिलकर मारता है। क्या आवश्यकता थी उसे पकड़ने की ? हमने अपनी अक्षुण्ण कीर्ति में क्यों बट्टा लगाया ? सौन्दर्य और सुषमा मानसिक आनन्द के लिए हैं; नष्ट करने के लिए, भोंड़ेपन से बर्तने और खिलवाड़ के लिए नहीं हैं। तीसरे दिन आई, तो दूर-ही-दूर रही। सीटी बजाई। उसे पुचकारा। मक्खन फेंका। पर वह काफी डरी हुई थी। उसने दूर पड़े मक्खन को खाया। टूटे सन्वन्ध को फिर जोड़ना पड़ा और पहली स्थिति के आने में पूरा एक सप्ताह लगा।

एक नया प्रयोग रामकली के साथ और किया। जेल में दो आने रोज के फल प्रति बी क्लास नजरबन्दी को मिला करते थे। मैं किशमिश और मुनक्के मँगाया करता। एक दिन मक्खन के अभाव में रामकली को किशमिश डाली। किशमिश को तो वह यों ही गपकने लगी। मक्खन तो कभी-कभी उसकी चोंच की बगल में लग जाता और उसको ठीक करने के लिए उसे अपनी चोंच को प्रायः इधर-उधर लकड़ी से, चर्खे से या किसी सूखते कपड़े से पोंछना पड़ता। किशमिशें थीं कि बस फौरन ही तो सटक ली जातीं। किशमिशोंका स्वाद तो उसे इतना लगा कि उनके मुकाबले मक्खन की कोई कदर ही नहीं रही। और फिर किशमिश खिलाने का मेरा तरीका भी दूसरा हो गया। प्रति प्रातः काल मुट्ठी में किशमिशें भरकर मैं निकलता और रामकली अपने साथियों के साथ जमीन पर बराबर या पीछे चलती। मुठ्ठी खोलकर मैं आगे

बढ़ता और वह उड़कर हाथ पर बैठ जाती और किशमिशें निगलने लगती। कभी-कभी एक किशमिश को चुटकी में पकड़ कर उसे दिखाता और वह उड़ कर अपने पंजे मेरी उँगलियों में जमाती और किशमिश ले लेती। यदि मैं किशमिश को मजबूती से पकड़ लेता, तो कई बार चोंच मारकर वह कें-कैं करके अपना रोष प्रकट करती कि आखिर यह क्या बेहूदगी है कि मैं उसे किशमिश नहीं लेने देता। किशमिशें खिलाने का एक और प्रयोग बढ़ा। अपने मुँह में, होठों से दाब कर, मैं किशमिश रामकली को दिखाता। वह फौरन उड़कर मेरी ठोड़ीपर बैठती और किशमिश ले जाती। मुझे कितना सुख होता रामकली की आजादी और उसके पालतूपने पर! दिन-भर वह अपने पास रहती और शाम को बसेरा लेने जेल के बाहर चली जाती। आखिर पिंजड़ों में कैद पक्षियों की अपेक्षा रामकली अधिक सुखी और अधिक पालतू थी। उससे एक कौटुम्बिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। सुखका आदान-प्रदान था। स्वार्थ की भावना उच्च स्तर पर आधारित थी।

फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल में खटमलों की भरमार थी। शेर, शैतान और गुण्डे से मैं नहीं डरता; पर मच्छरों और खटमलों से घबराता हूँ। दीवारों और ढूलों क छेदों और दरारों में वे लुके-छिपे रहते और रात को खून पीते। नींद हराम हो जाती। मैं दरारों और छेदों में मिट्टी और कडुआ तेल मिलाकर डालता। एक दिन सिरहाने पौनियों का बण्डल रख दिया सुविधा के लिए। अगले दिन प्रातः काल जो बण्डल खोला, को बीसों खटमल उसमें छिपे पाये। सोचा, क्यों न रामकली को कुछ बढ़िया भोजन दिया जाय। बण्डल लेकर बाहर गया। सीटी से रामकली को बुलाया। वह आई। पौनियाँ खोलकर जैसे ही उसे दिखाई, वैसे ही तिरछी नजर से उसने एकटक देखा और फिर वह उन पर जुट गई। शायद किशमिशों से अधिक स्वाद उसे खटमलों के खाने में आ रहा था।

बैरकसे पीछे वालीबाल के मैदान से लगी दीवार में बड़ी गलगलोंका एक जोड़ा अपना घोंसला बनाया करता था। छोटी गलगलों की देखादेखी उन्हें भी मेरे पास आनेकी सूझी। बड़ी गलगलें मुनक्कों को अधिक पसन्द करतीं, मुनक्का यदि छोटी गलगलों के पल्ले पड़ जाता, तो उन्हें उसके खाने में बड़ी तकलीफ होती। साबित उनसे वह निगला नहीं जाता। जमीन से पीट-पीट कर टुकड़े करके वे खातीं। इस बीच बड़ी गलगलें या कौए उनपर टूट पड़ते। रामकली

तो बैरक में उड़ आती और मुनक्का खाती। बड़ी गलगलों को लपकाने की बहुत कोशिश की; पर उनसे वह सम्बन्ध नहीं हो सका, जो रामकली और उसकी सहेलियों से।

जूनके आखीर में एक दिन रामकली नहीं आई। आशंका हुई कि कहीं किसी दुर्घटना की वह शिकार तो नहीं हो गई। दिन बीतते गये और वह नहीं आई। रोजाना उसकी याद आती। तोते, कौए और अन्य गलगलें दिखाई देतीं; पर रामकली का कुछ पता न चलता। उसके पास अपना सँदेसा कौन ले जाता ? यों मनसे उसके सुखकी कामना करता; पर दो महीने होने आये और वह न आई। साथी कहते उसे बाज खा गया या बिल्ली या न्यौलेके पेट में वह पहुँची। शायद। पर मुझे एक क्षीण आशा थी कि कहीं रामकली गृहस्थी के जंजाल में तो नहीं फँसी रह गई ! अपने बच्चों के भार के कारण शायद वह अपने पीहर की ओर न आ सकी हो। हालकी विवाहिता लड़कियाँ पीहर जाने के लिए तड़पती हैं। भाई के आगमन के लिए मनौती मानती हैं। माता-पिता से मिलने के लिए तरसती हैं। पर वाह रे गृहस्थी के जंजाल ! जहाँ कुछ बच्चे हुए कि पितृगृह-सम्बन्धी स्नेह-सरोवर सूखने लगता है। उधर जाने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। शायद रामकली की जिम्मेदारियाँ कुछ बढ़ गई हों। मैंने उसे मरा नहीं माना। एक दिन जैसे ही मैं कातने बैठा, सितम्बर के शुरू में कि रामकली आ धमकी और साथ में था उसके उसका बच्चा—मुन्ना। इतना सुन्दर और भोला कि अपने बच्चे ब्रजेश की याद दिलाने लगा। घर को ब्रजेश को एक चिट्ठी लिखी ब्रजभाषामें कि "बेटा ब्रजेश, मैंने एक गलगलिया पालीऐ। वाकैं एकु बिजेसुऐ। बाकी अम्मा कौ नाउँ (नाम) मैंने धरौ ए रामकली। बु हातपै बैठकै खातिऐ" ब्रजेश की चिट्ठी आई "बाबूजी, गलगलिया कौ बिजेसु कितनौ बड़ौ है गऔ ऐ। सिब (सब) बातैं लिखौ।"

रामकली खुद तो मेरे पास आती; पर जब उसका मुन्ना आता, तब वह आतंक सूचक सिगनल देकर उसको मेरे पास आने से रोकती। कैं-३ (प्लुत) कैं-३ करने में अपनी चोंच पूरी खुली रखती। उसे सावधान करती कि ऐ अनुभवहीन भोले बच्चे, जरा सँभलकर रह। आदमी का क्या ठिकाना कि कहीं तुझे पकड़ ले और मुझे तेरा बिछोह भुगतना पड़े। पर मुन्ना तो बहुत जल्दी हिल गया और अपनी अम्मा रामकली की भर्त्सना की तनिक भी पर्वाह न

करता । इस प्रकार रामकली और मुन्ना फतहगढ़-जेल-जीवन के बड़े स्नेही साथी बन गये थे ।

गत ३० नवम्बर सन् १९४५ को जेलसे मेरी रिहाई हुई । जेलसे श्री देवेन्द्र शर्माने लिखा—"आपकी गलगल – रामकली—आपके ढूलेपर प्रतिदिन आती है । चारों ओर देखती है और उसे किशमिशें खिलानी पड़ती हैं ।"

रामकली ने मेरे हृदय-पटल कर एक अमिट छाप छोड़ी है । लोगों को क्या मालूम कि उसके सत्संग से मुझे कितनी शान्ति मिली । उसकी चितवन और उसकी मुद्रा अब भी ताजा है । वह मुझे कितना पहचानती थी ।

वह निगाहें क्यों हुई जाती हैं या रब दिल के पार ;
जो मिरी कोताहिए किस्मत से मिजगां हो गई ।

